वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 363
ISBN 978-93-82071-41-9

आगम दर्पण

– लेखिका –
जम्बूद्वीप रचना की पावन प्रेरिका
युगप्रवर्तिका गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव-2012, पूज्य चारित्रचन्द्रिका गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के 61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
1100 प्रतियाँ	माघ कृ. चतुर्दशी, 9 फरवरी 2013	24/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

-: निर्देशक एवं सम्पादक:-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

-: प्रबंध सम्पादक :-

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

प्रस्तुत पुस्तक 'आगम दर्पण' का सृजन पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के द्वारा किया है। यह पुस्तक वर्तमान में समाज में प्रचलित भ्रान्तियों का निराकरण करने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। अनादिकाल से पंचामृत अभिषेक, स्त्री अभिषेक, फूल, फल आदि अष्टद्रव्य से पूजन, भगवान के चरण में चंदन लेपन, जनेऊ धारण कर भगवान का अभिषेक पूजन एवं साधुओं को आहार देने की परम्परा रही है। 24 तीर्थंकरों के शासन देव-देवी जो कि सम्यग्दृष्टि हैं, उनकी पूजा-अर्चना का विधान हमेशा रहा है। पूर्वाचार्यों ने अपने ग्रंथों में इन सभी विषयों का उल्लेख किया है, अतः इन प्रमाणों को पढ़कर स्वाध्याय करके, चिन्तन-मनन करके हठवादिता को छोड़कर आप सभी लोग आगम पंथी बनें, यही पूज्य माताजी की मंगल भावना है।

अनेक प्राचीन तीर्थों पर, मंदिरों में, देव-देवियों की प्रतिमाएँ, यक्ष-यक्षी सहित जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाएँ हैं, जिनके चित्र भी इस पुस्तक में संलग्न किए गए हैं।

गोम्मटसार जीवकाण्ड में सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य श्री नेमिचन्द्र ने अविरतसम्यग्दृष्टी नाम के चतुर्थ गुणस्थान का लक्षण बताते हुए बहुत अच्छी बात लिखी है–

सम्माइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं, अजाणमाणो गुरुणियोगा।।

अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान करता है, किन्तु अज्ञानतावश गुरु के उपदेश से विपरीत अर्थ का भी श्रद्धान कर लेता है। तब भी वह सम्यग्दृष्टि है। परन्तु–

आगे की गाथा में आचार्य लिखते हैं–

सुत्तादो तं सम्मं, दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छा-इट्ठी जीवो तदो पहुदी।।

जब गणधरादि कथित सूत्र के आश्रय से आचार्यादि के द्वारा भले प्रकार समझाए जाने पर भी यदि वह जीव इस पदार्थ का समीचीन श्रद्धान न करे, तो वह जीव उस ही काल से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

इस पुस्तक का स्वाध्याय कर आप सभी लोग अपना सम्यग्दर्शन दृढ़ करें, यही मंगल भावना है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें, जिनेन्द्रदेव से यही मंगल प्रार्थना है।

प्रस्तावना

–आर्यिका सुव्रतमती (संघस्थ)

भगवान महावीर के शासनकाल में श्री यतिवृषभाचार्य, श्री वीरसेनस्वामी, श्री कुंदकुंदाचार्य, श्री जिनसेनाचार्य, श्री रविषेणाचार्य, श्री पूज्यपाद स्वामी, श्री वसुनन्दिआचार्य, श्री शुभचन्द्र आचार्य, श्री पद्मनंदि आचार्य आदि अनेक आचार्य हुए हैं, जिन्होंने अपने आगम में पंचामृत अभिषेक, स्त्री अभिषेक, चन्दन, पुष्प, फल आदि से पूजन, जिनागम में शासन देव-देवी एवं यज्ञोपवीत श्रावक के लिए धारण करना आवश्यक है, आदि के उल्लेख किए हैं अर्थात् इन पूर्वाचार्यों के ग्रंथों में अनेकों प्रमाण भरे हुए हैं।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने अनेकों ग्रंथों का स्वाध्याय और उसका आलोढन करके, अनेक ग्रंथों के उद्धरणों को देते हुए इस 'आगम दर्पण' पुस्तक को तैयार किया है। सन् 1983 में पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी की प्रेरणा से पूज्य माताजी ने इस पुस्तक में अनेक ग्रंथों के उद्धरणों का संकलन करके तैयार किया था, लेकिन अभी तक इसके प्रकाशन का योग नहीं आ पाया था।

जयधवला प्रथम पुस्तक के पृ. 100 पर आचार्य श्री वीरसेन स्वामी ने श्रावक के चार धर्म बताए हैं– ''दाणं पूजा– सीलमुववासो चेदि चउव्विहो सावय धम्मो।'' अर्थात् दान, पूजा, शील और उपवास ये श्रावक के चार धर्म हैं।

पुनः इसी पृष्ठ पर उन्होंने पंचामृत अभिषेक के, पुष्पवृष्टि करने के, चंदन विलेपन आदि के प्रमाण लिखे हैं, जो कि सबसे प्राचीन प्रमाण हैं।

आदिपुराण में श्री जिनसेनाचार्य ने पूजन के 4 प्रकार बताए हैं–

(1) सदार्चन (नित्यमह) (2) चतुर्मुख-सर्वतोभद्र (3) कल्पद्रुम और (4) आष्टान्हिक।

सदार्चन को नित्यमह या नित्यपूजा भी कहते हैं। प्रतिदिन अपने घर से गंध, पुष्प, अक्षत आदि लेकर जिनमंदिर में विधिवत् पंचामृत अभिषेक, पूजा करना नित्यमह कहलाता है।

'पंचामृत अभिषेक पाठ संग्रह' में 16 अभिषेक पाठ हैं। प्रायः सभी आचार्यों के द्वारा लिखित होने से मान्य है, प्रामाणिक हैं। सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ के रचयिता श्री पूज्यपादस्वामी द्वारा रचित पंचामृत अभिषेक पाठ, क्षेत्रपाल, दिग्पाल आह्वान आदि जो कि संस्कृत में है, पूज्य माताजी ने उसका हिन्दी पद्यानुवाद किया है, जो कि जम्बूद्वीप पूजांजलि में प्रकाशित है।

सैकड़ों-हजारों वर्ष पूर्व के आचार्यों, विद्वानों द्वारा लिखित शास्त्र आज भी उपलब्ध हैं। श्री जिनेन्द्रदेव की अभिषेकक्रिया पंचामृताभिषेक के बिना पूर्ण नहीं होती। जो श्रावक-श्राविकाएँ प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव का पंचामृत अभिषेक करके, पूजा, सामायिक आदि क्रियाओं को करते हुए अपने परिणामों को उज्ज्वल बनाते हैं, वे एक न एक दिन अवश्य ही अपनी आत्मा को पूज्य-पवित्र बना लेंगे। इस पुस्तक में सभी विषय यथार्थ और आर्षमार्गानुसार हैं।

अतः इसे पढ़कर सभी भव्यजीव आगम के परिप्रेक्ष्य में पक्षपात रहित होकर, चिन्तन, मनन व दृढ़ श्रद्धान कर आगमानुसार प्रवृत्ति करें। यही मंगल भावना है।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान—टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
जन्मतिथि—आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)
जाति—अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र**—गोयल, **नाम**—कु. मैना
माता-पिता—श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन
आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत—ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन
क्षुल्लिका दीक्षा—चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम– क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा—वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व—अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि—सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा—हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा– भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा—पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा—'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा—जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

—जीवन प्रकाश जैन (प्रबंध सम्पादक)

ईसवी सन् 1972 में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से स्थापित उक्त संस्था के द्वारा जम्बूद्वीप रचना के निर्माण हेतु मेरठ (उ.प्र.) के ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर में नशिया मार्ग पर जुलाई 1974 में एक भूमि क्रय की गई, जहाँ सर्वप्रथम 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की अवगाहना प्रमाण सात हाथ (सवा दस फुट) ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान करने हेतु फरवरी 1975 में एक लघुकाय जिनालय का निर्माण किया गया, जो सन् 1990 में एक अनोखे 'कमल मंदिर' के रूप में निर्मित हुआ है। यहाँ विराजमान कल्पवृक्ष भगवान महावीर से यह अतिशय क्षेत्र निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर होता हुआ नित्य नये निर्माणों के द्वारा संसार में अद्वितीय पर्यटन स्थल के रूप में प्रसिद्ध हुआ है। इस प्रतिमा के दर्शन करके भक्तगण अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं।

जम्बूद्वीप निर्माण का प्रथम चरण—जुलाई सन् 1974 में रखी गई नींव के आधार पर जम्बूद्वीप के बीचोंबीच में सर्वप्रथम आगम वर्णित सुमेरुपर्वत (101 फुट ऊँचा) का निर्माण अप्रैल सन् 1979 में एवं सन् 1985 में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण पूर्ण हुआ। सोलह जिनमंदिरों से समन्वित उस सुमेरुपर्वत के अंदर से निर्मित 136 सीढ़ियों से चढ़कर श्रद्धालु भक्त समस्त भगवन्तों के दर्शन करके जब सबसे ऊपर पाण्डुकशिला के निकट पहुँचते हैं, तो नीचे जम्बूद्वीप रचना के सभी नदी, पर्वत, मंदिर, उपवन आदि दृश्यों के साथ-साथ हस्तिनापुर के आसपास के सुदूरवर्ती ग्रामों का भी प्राकृतिक सौंदर्य देखकर फूले नहीं समाते हैं।

यात्री सुविधा—हस्तिनापुर तीर्थ में जम्बूद्वीप स्थल के पूरे परिसर में संस्थान द्वारा कार्यालय का सक्रिय संचालन किया जाता है। वहाँ यात्रियों के ठहरने हेतु आधुनिक सुविधायुक्त 200 कमरे, 50 से अधिक डीलक्स फ्लैट एवं अनेकों गेस्ट हाउस (बंगले) बने हुए हैं। इसके साथ ही यहाँ सुन्दर भोजनालय है जहाँ यात्रियों को सुविधापूर्वक शुद्ध भोजन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त 2 किमी. दूर हस्तिनापुर सेन्ट्रल टाउन में सरकारी अस्पताल, डाकखाना, बाजार, इंटरकालेज तथा अन्य शिक्षण संस्थाएँ आदि सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

हस्तिनापुर कैसे पहुँचे ?—भारत की राजधानी दिल्ली से 110 किमी. पश्चिमी उत्तरप्रदेश में जिला-मेरठ से 40 किमी. दूर हस्तिनापुर तीर्थ है। राजधानी दिल्ली से हस्तिनापुर के लिए अंतर्राज्यी बस अड्डे अथवा आनंद विहार बस अड्डे से उत्तरप्रदेश रोडवेज तथा डी.टी.सी. बसों की निरंतर सेवा उपलब्ध है। मेरठ से भी प्रति आधे घंटे के अंतराल से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पहुँचने हेतु रोडवेज की बसें सुलभता के साथ उपलब्ध रहती हैं। 'जम्बूद्वीप' के नाम से ये बसें चलती हैं जो सीधे जम्बूद्वीप के सामने ही रुकती हैं और जम्बूद्वीप से ही मेरठ, दिल्ली, तिजारा आदि यात्रा हेतु बसें उपलब्ध रहती हैं। दिल्ली और मेरठ के बीच रेल सेवा भी है। देश-विदेश के यात्रीगण हस्तिनापुर पधारकर इस धरती का स्वर्ग मानी जाने वाली 'जम्बूद्वीप रचना' के दर्शन करें और मानसिक शांति का अनुभव करते हुए मनवांछित फल प्राप्त करें, यही मंगलकामना है।

आगम दर्पण पुस्तक में प्रयुक्त ग्रंथों एवं आचार्यों के नाम

1. महाभिषेक (अभिषेक पाठ) - श्री पूज्यपाद स्वामी
2. शिलालेख संग्रह
3. कषाय पाहुड़ (जयधवला) - श्री वीरसेन स्वामी
4. भाव संग्रह (प्राकृत) - श्री देवसेन सूरि
5. पद्मपुराण - श्री रविषेणाचार्य
6. हरिवंशपुराण - श्री जिनसेनाचार्य
7. वसुनन्दिश्रावकाचार - श्री वसुनन्दी आचार्य
8. नागकुमार चरित्र - श्री मल्लिसेण सूरि
9. जिनसंहिता
10. भाव संग्रह (संस्कृत) - श्री वामदेव पण्डित
11. वरांग चरित - वर्धमान भट्टारक आचार्य
12. श्रीपाल चरित - श्री सकलकीर्ति आचार्य
13. णमोकारकल्प - श्री सिंहनंदि जी
14. पद्मपुराण भाषा - पं. दौलतराम जी
15. वसुनंदिश्रावकाचार भाषा - बाबा दुलीचंद जी
16. षट्पाहुड़ (संस्कृत टीका)
17. यशस्तिलक महाकाव्य - श्री सोमदेव सूरि
18. प्राकृत निर्वाण भक्ति - श्री कुंदकुंददेव
19. उमास्वामी श्रावकाचार - श्री उमास्वामी आचार्य
20. पूजासार (अभिषेक पाठ) - भगवत् इन्द्रनन्दि
21. नित्यमहोद्योत (अभिषेक पाठ) - पण्डित आशाधर
22. जिनदत्तचरित्त - श्री गुणभद्राचार्य
23. आराधना कथा कोष (संस्कृत) - -ब्र. श्री नेमिदत्त जी
24. श्रीपालचरित वृहत् - श्री नेमिचन्द्र कृत
25. चन्द्रप्रभचरित
26. गौतमचरित्र - श्री धर्मचंद्र मंडलाचार्य
27. षट्कर्मोपदेशरत्नमाला - आचार्य सकलभूषण जी
28. बृहत्कथा कोष
29. दशलक्षण व्रत कथा

30. सुगंधदशमी व्रत कथा
31. आदिपुराण - श्री जिनसेनाचार्य
32. जैन विवाह विधि - पं. चैनसुखदास न्याय तीर्थ जयपुर कृत
33. वृहत् जैन विवाह विधि - पं. कुंज बिहारीलाल जी शास्त्री द्वारा लिखित
34. बृहत्स्नपन (अभिषेक पाठ) - श्री गुणभद्राचार्य
35. लघुस्नपन-संस्कृत टीका सहित - श्री अभयनंदिसूरि
36. जैनाभिषेक-संस्कृत टीका सहित - गजांकुश कवि
37. तिलोयपण्णत्ति - श्री यतिवृषभाचार्य
38. त्रिलोकसार - श्री नेमिचन्द्र आचार्य
39. गोम्मटसार कर्मकाण्ड - श्री नेमिचन्द्र आचार्य
40. प्रतिष्ठासारोद्धार - पण्डित प्रवर श्री आशाधर विरचित
41. जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय
42. वसुनन्दी प्रतिष्ठापाठ - श्री वसुनन्दी आचार्य

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृ. सं.
1.	मंगलाचरण	1
2.	पंचामृत अभिषेक	2
3.	पंचामृत अभिषेक के अनेक प्रमाण	11
4.	चंदन पूजा का महत्त्व	21
5.	अष्टद्रव्य से पूजा	26
6.	स्त्रियों के द्वारा जिनाभिषेक के प्रमाण	38
7.	यज्ञोपवीत आवश्यक है	43
8.	शासन देव-देवी आदि के प्रमाण	47
9.	वर्तमान में महान बीसपंथी आचार्य	53
10.	श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार चतुर्थ अधिकार (पं. सदासुखदास कृत हिन्दी)	56
11.	शासन देव-देवी के चित्र	58

आगम दर्पण

मंगलाचरण

अर्हन्तो मंगलं कुर्युः, सिद्धाः कुर्युश्च मंगलम्।
आचार्याः पाठकाश्चापि, साधवो मम मंगलम्।।1।।

मंगलं जिनधर्मः स्यात् जिनागमाश्च मंगलम्।
मंगलं जिनचैत्यानि, चैत्यालयाश्च मंगलम्।।2।।

नवधा भक्तितो वंद्या, इमे श्रीनवदेवताः।
नवकेवललब्ध्यै स्युः कुर्वन्तु भुवि मंगलम्।।3।।

श्रीतीर्थकृन्मुखोद्भूतां, वाणीमाश्रित्य भाति यः।
पूर्वाचार्यैर्लिखितोऽसा - वागमो दर्पणायते।।4।।

आगमश्चक्षुरस्यासा - वागमचक्षुरुच्यते।
तान्नत्वा सर्वसाधूंश्च-याचेऽहं तद्गुणान् मुदा।।5।।

अर्थ–अर्हंत परमेष्ठी मंगल करें, सिद्ध परमेष्ठी मंगल करें, आचार्य परमेष्ठी, उपाध्याय परमेष्ठी और साधु परमेष्ठी भी हमारे लिए मंगलकारी होवें।।1।।

जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित धर्म मंगलकारी होवे, जैन आगम मंगलकारी होवें, जिनप्रतिमाएं मंगल करें एवं जिनचैत्यालय मंगलकारी होवें।।2।।

ये श्रीनवदेवता नवधा भक्तिपूर्वक–मन, वचन, काय को कृत, कारित, अनुमोदना से गुणित करने पर नव प्रकार से वंदनीय हैं। ये नवदेवता हमें नव केवललब्धि प्रदान करें और सारे जगत् के लिए मंगलकारी होवें।।3।।

श्री तीर्थंकर भगवान के मुख से उत्पन्न वाणी का आश्रय लेकर जो शोभित हो रहा है और जो पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित है वह आगम दर्पण के समान आचरण करता है–दिख रहा है।।4।।

आगम ही है चक्षु जिनके वे आगमचक्षु कहलाते हैं। ऐसे उन सभी आगम-चक्षु साधुओं को नमस्कार करके हम हर्षपूर्वक उनके गुणों की याचना करते हैं।।5।।

पंचामृत अभिषेक

श्री पूज्यपाद स्वामी जो कि सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ के कर्ता महान् आचार्य हैं उनका बनाया हुआ ''महाभिषेक'' प्रसिद्ध है। यह ''इन्द्रध्वज विधान'' में छपाया जा चुका है। सन् 1987 में मैंने इस ''महाभिषेक' का हिन्दी पद्यानुवाद भी कर दिया है जो कि सभी के लिए सरल बन गया है।

श्री पूज्यपाद स्वामी ने अभिषेकपाठ में प्रारंभ में दो श्लोक दिये हैं जिनमें नित्यपूजा के प्रारंभ में करने योग्य विधि का संकेत दिया है पुनः अंत में पैंतीस से चालीस श्लोकों में से अंत के चार श्लोकों में अभिषेक के बाद में करने योग्य पूजा, मंत्रजाप, यक्ष, यक्षी आदि के अर्घ्य का संकेत दिया है। इसे ही देखिए–

आनम्यार्हन्तमादा-वहमपि विहितस्नानशुद्धिः पवित्रैः।
तोयैः सन्मंत्रयंत्रै-र्जिनपतिसवनाम्भोभिरप्यात्तशुद्धिः।।
आचम्यार्घ्यं च कृत्वा, शुचिधवलदुकूलान्तरीयोत्तरीयः।
श्रीचैत्यावासमानौम्यवनतिविधिना त्रिःपरीत्य क्रमेण।।1।।

द्वारं चोद्घाट्य वक्त्राम्बरमपि विधिनेर्यापथाख्यां च शुद्धिं।
कृत्वाहं सिद्धभक्तिं, बुधनुतसकली-सत्क्रियां चादरेण।।
श्री जैनेन्द्रार्चनार्थं, क्षितिमपि यजन-द्रव्यपात्रात्मशुद्धिं।
कृत्वा भक्त्या त्रिशुद्ध्या, महमहमधुना प्रारभेयं जिनस्य।।2।।[1]

पूजा अभिषेक के प्रारम्भ में स्नान करके शुद्ध हुआ मैं अर्हन्त देव को नमस्कार करके पवित्र जलस्नान से, मंत्र स्नान से और व्रत स्नान से शुद्ध होकर आचमन कर, अर्घ्य देकर, धुले हुए सफेद धोती और दुपट्टा को धारण कर, वंदना विधि के अनुसार तीन प्रदक्षिणा देकर जिनालय को नमस्कार करता हूँ तथा द्वारोद्घाटनकर और मुख वस्त्र हटाकर विधिपूर्वक ईर्यापथशुद्धि करके,

1. अभिषेक पाठ संग्रह-पूज्य पाद स्वामी विरचित पृ. 1

सिद्धभक्ति करके, सकलीकरण करके, जिनेन्द्रदेव की पूजा के लिए भूमिशुद्धि, पूजा-द्रव्य की शुद्धि, पूजा-पात्रों की शुद्धि और आत्मशुद्धि करके भक्तिपूर्वक मन, वचन, काय की शुद्धि से अब जिनेन्द्रदेव का महामह अर्थात् अभिषेक-पूजा प्रारम्भ करता हूँ।

पुनः विधिवत् अभिषेक करने का विधान है। पुनः अंत के श्लोक ये हैं–

निष्ठाप्यैवं जिनानां, सवनविधिरपि प्राच्र्यभूभागमन्यं।
पूर्वोक्तैर्मंत्रयंत्रै-रिव भुवि विधिनाराधनापीठयंत्रम्।।
कृत्वा सच्चंदनाद्यैर्वसुदलकमलं कर्णिकायां जिनेंद्रान्।
प्राच्यां संस्थाप्य सिद्धा-नितरदिशि गुरून् मंत्ररूपान्निधाय।।37।।

जैनं धर्मागमार्चा-निलयमपि विदिक्-पत्रमध्ये लिखित्वा।
बाह्ये कृत्वाथ चूर्णैः, प्रविशदसदकैः, पंचकं मंडलानाम्।।
तत्र स्थाप्यास्तिथीशा, ग्रहसुरपतयो, यक्षयक्ष्यः क्रमेण।
द्वारेशा लोकपाला, विधिवदिह मया, मंत्रतो व्याह्रियन्ते।।38।।

एवं पंचोपचारै-रिह जिनयजनं, पूर्ववन्मूलमंत्रे-
णापाद्यानेकपुष्पै-रमलमणिगणै-रङ्गुलीभिः समंत्रैः।।
आराध्यार्हंतमष्टोत्तरशतममलं, चैत्यभक्त्यादिभिश्च।
स्तुत्वा श्रीशांतिमंत्रं, गणधरवलयं, पंचकृत्वः पठित्वा।।39।।

पुण्याहं घोषयित्वा, तदनु जिनपतेः पादपद्मार्चितां श्री-
शेषां संधार्य मूर्ध्ना, जिनपतिनिलयं, त्रिःपरीत्य त्रिशुद्ध्या।।
आनम्येशं विसृज्या-मरगणमपि यः, पूजयेत् पूज्यपादं।
प्राप्नोत्येवाशु सौख्यं, भुवि दिवि विबुधो, देवनंदीडितश्रीः।।40।।

अर्थ–इस प्रकार जिनेन्द्रदेव की पूजाविधि को पूर्ण करके पूर्वोक्त मंत्र-यंत्रों से विधिपूर्वक आराधनापीठ यंत्र की पूजा करें पुनः चंदन आदि के द्वारा आठ दल का कमल बनाकर कर्णिका में श्री जिनेन्द्रदेव को स्थापित कर पूर्व दिशा में सिद्धों को, शेष तीन दिशा में आचार्य, उपाध्याय और साधु को विराजमान करके पुनः विदिशा के दलों में क्रम से जिनधर्म, जिनागम, जिनप्रतिमा और जिनमंदिर को लिखकर बाहर में चूर्ण से और धुले हुये उज्ज्वल चावल आदि से पंचवर्णी मण्डल बना लेवें। इस कमल के बाहर पंचदश तिथिदेवता को, नवग्रहों को, बत्तीस इन्द्रों को, चौबीस यक्षों को, चौबीस यक्षिणी को तथा द्वारपालों को और

1. अभिषेक पाठ संग्रह-श्री पूज्यपाद स्वामी विरचित पृ. 12-13

लोकपालों को विधिवत् मंत्रपूर्वक मैं आह्वानन विधि से बुलाता हूँ।

इस तरह पंचोपचारों से मंत्रपूर्वक जिन भगवान की पूजन कर पूर्ववत् मूल मंत्रों द्वारा अनेक प्रकार के पुष्पों से, निर्मल मणियों की माला से या अंगुली से एक सौ आठ जाप्य करके अरहंत देव की आराधना करें। पुनः चैत्यभक्ति आदि शब्द से पंचगुरूभक्ति और शांतिभक्ति के द्वारा स्तवन करके शांतिमंत्र और गणधरवलय मंत्रों को पाँच बार पढ़कर पुण्याहवाचन करना, इसके बाद जिनेन्द्रदेव के चरणकमलों से पूजित श्रीशेषा–आसिका को मस्तक पर चढ़ाकर जिनमंदिर की तीन प्रदक्षिणा देकर, मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके और अमरगण अर्थात पूजा के लिए बुलाये गये देवों का विसर्जन करके जो व्यक्ति ''पूज्यपाद''–जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता है वह ''देवनन्दी'' से पूजित श्री विद्वान् मर्त्यलोक और देवलोक में शीघ्र ही सुख को प्राप्त करता है।। 36 से 40।।

यह अभिषेकपाठ सर्वार्थसिद्धि के कर्ता श्री पूज्यपाद स्वामीकृत ही है। यह अभिषेक पाठ संग्रह की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है। यथा–''शिलालेख''[1] नं. 40 (64) में निम्नलिखित दो पद्य दिये गये हैं–

यो देवनंदिप्रथमाभिधानो, बुद्ध्या महत्या स जिनेन्द्रबुद्धिः।
श्री पूज्यपादोऽजनि देवताभि-र्यत्पूजितं पादयुगं यदीयम्।।10।।

जैनेन्द्रं निजशब्दभोगमतुलं, सर्वार्थसिद्धिः परा।
सिद्धान्ते निपुणत्वमुद्धकवितां, जैनाभिषेकः स्वकः।।
छन्दस्सूक्ष्मधियं समाधिशतक-स्वास्थ्यं यदीयं विदा-
माख्यातीह स पूज्यपादमुनिपः, पूज्यो मुनीनां गणैः[2]।।11।।

पहले पद्य में पूज्यपाद स्वामी के तीन नाम प्रख्यात होने का हेतु बताया है अर्थात् जिनका ''देवनंदि'' यह प्रथम नाम था, बुद्धि और महानता से जो जिनेन्द्रबुद्धि कहलाए, पुनः देवताओं के द्वारा उनके पाद युगल की पूजा की गयी थी इसलिए वे ''श्री पूज्यपाद'' नाम से प्रसिद्ध हुए हैं।

पुनः दूसरे पद्य में उनके बनाये गये ग्रंथों के नाम हैं। अर्थात् जिनका ''जैनेन्द्र व्याकरण'' अतुल शब्दों का कथन करता है, जिनकी ''सर्वार्थसिद्धि'' सिद्धांत में निपुणता को सूचित करती है एवं जिनका बनाया हुआ ''जैनाभिषेक'' छंद ग्रन्थ और 'समाधिशतक' उनके श्रेष्ठ कवित्व को कहते हैं ऐसे वे श्री पूज्यपाद

1. शिलालेख संग्रह पु. । 2. ''अभिषेक पाठ संग्रह'' प्रस्तावना से, पृ. 8।

मुनिनाथ, मुनियों के समूह से पूज्य हैं।

यह शिलालेख शक संवत् 1085, विक्रम संवत् 1220 में उत्कीर्ण किया गया है।

इस अभिषेकपाठ में ''ॐ ह्रीं अत्रस्थ क्षेत्रपालाय स्वाहा। क्षेत्रपालबलिदानम्।''

इस मंत्र से क्षेत्रपाल को अर्घ्य दिलाया है। आगे दश दिक्पालों का अर्घ्य है। यथा–

पूर्वाशा-देश-हव्या-सन-महिषगते नैर्ऋते पाशपाणे।
वायो यक्षेंद्र-चन्द्राभरण-फणिपते रोहिणी-जीवितेश।।
सर्वेऽप्यायात यानायुधयुवतिजनैः सार्धमों भूर्भुवः स्वः।
स्वाहा गृण्हीत चार्घ्यं, चरूममृतमिदं स्वस्तिकं यज्ञभागं ।।11।।[1]

ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसंपूर्णस्वायुधवाहनवधू-चिन्हसपरिवारा इंद्राग्नियमनैर्ऋतवरुणवायुकुबेरेशानधरणेंद्रसोमनाम-दशलोकपाला! आगच्छत आगच्छत संवौषट्, स्वस्थाने तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् इदमर्घ्यं पाद्यं गृण्हीध्वं गृण्हीध्वं ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा स्वधा।

इसी ''महाभिषेक'' में पंचामृत अभिषेक है उसमें एक मंत्र देखिये, दूध के अभिषेक का–

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं इवीं क्ष्वीं हं सस्त्रैलोक्यस्वामिनः क्षीराभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

यह अभिषेकपाठ श्री पूज्यपाद स्वामी विरचित ही है और ये पूज्यपाद स्वामी मूलसंघ के महान आचार्य हैं। यह बात सर्वजनविदित है और जब इन आचार्यदेव को महान माना जाएगा तब पुनः इनके द्वारा रचित पंचामृत अभिषेक भी किसे प्रमाणिक नहीं होगा ?

सन् 1936, वीर निर्वाण संवत् 2462 में पं. पन्नालाल जी सोनी (ब्यावर वाले), राज. ने एक ''अभिषेकपाठ संग्रह'' प्रकाशित किया था। उसमें सर्वप्रथम श्री पूज्यपाद स्वामी का ही अभिषेकपाठ संगृहीत है। इसके बाद 15 अभिषेक पाठ और दिये गये हैं। ये सभी पंचामृत अभिषेकपाठ हैं। इन सबमें क्षेत्रपाल, दिक्पाल और शासनदेव-देवियों के आह्वानन व अर्घ्य दिये गये हैं। ये सभी अभिषेक पाठ मूलसंघाम्नाय के आचार्यों एवं विद्वानों के द्वारा ही रचे गये हैं। इनकी तालिका निम्न प्रकार है–

1. अभिषेक पाठ संग्रह-श्री पूज्यपाद स्वामी विरचित पृ. 5

अभिषेक पाठ	**कर्ता के नाम**
1. महाभिषेक–	श्री पूज्यपाद स्वामी
2. बृहत्स्नपन–	श्री गुणभद्र भदन्त
3. जिनाभिषेक–	श्री सोमदेवसूरि
4. लघुस्नपन संस्कृत टीका सहित–	अभयनंदिसूरि
5. जैनाभिषेक संस्कृत टीका सहित–	गजांकुश कवि
6. नित्यमहोद्योत–	पंडित आशाधर सूरि
7. अभिषेकक्रम–	(अज्ञात)
8. जन्माभिषेक विधि–	पंडित अप्यपार्य
9. नित्यमह–	पं. नेमिचंद्र
10. जिनस्नपन–	इन्द्रनंदी योगीन्द्र
11. रत्नत्रयादि अभिषेक–	आचार्य सकलकीर्ति
12. सिद्धचक्राभिषेक–	भट्टारक शुभचंद्र
13. कलिकुंडयंत्राभिषेक–	(अज्ञात)
14. जिनश्रुतगुरू सिद्धरत्नत्रयस्नपन विधि–	पंडित आशाधरसूरि
15. भाषापंचामृताभिषेक–	(अज्ञात)
16. महाभिषेक या बृहत्स्नपन पंजिका–	इन्द्रवामदेव

इन अभिषेक पाठों में श्री गुणभद्र भदंत, श्री अभयनंदिसूरि, श्री इंद्रनंदि आचार्य आदि महान आचार्य मूल संघ के महान आचार्य माने गये हैं। इन्हें कोई भी पाप-भीरू विद्वान दुराग्रही नहीं कह सकता है। तब भला इनके द्वारा बनाए हुए ये पंचामृत अभिषेकपाठ अप्रमाणीक कैसे कहे जा सकते हैं?

इन अभिषेक पाठों में पुष्पवृष्टि करने के, चंदन विलेपन आदि के प्रमाण विद्यमान हैं। सबसे बड़ा प्रमाण ''कसायपाहुड़'' की टीका जयधवला में आता है। देखिए–

चउवीस वि तित्थयरा सावज्जा; छज्जीवविराहणहेउसावयधम्मोवएस-कारित्तादो। तं जहा, दाणं पूजा सीलमुववासो चेदि चउव्विहो सावयधम्मो। एसो चउव्विहो वि छज्जीवविराहओ; पयण-पायणग्गिसंधुक्कण-जालण-सूदि-सूदाणादिवावारेहि जीवविराहणाए विणा दाणाणुववत्तीदो। तरुवरछिंदण-छिंदावणिट्टपादण-पादावण-तद्दहण-दहावणादिवावारेण छज्जीवविराहणहेउणा विणा जिणभवणकरणकरावणण्णहाणुववत्तीदो। ण्हवणोवलेवण-संमज्जण-

छुहावण-पु (फु) ल्लारोवण-धूवदहणादिवावारेहि जीववहाविणाभावीहि विणा पूजकरणाणुववत्तीदो च। कथं सीलरक्खणं सावज्जं ? ण; सदारपीडाए विणा सीलपरिवालणाणुववत्तीदो।कधमुववासो सावज्जो ? ण; सपोट्टत्थपाणिपीडाए विणा उववासाणुववत्तीदो। थावरजीवे मोत्तूण तसजीवे चेव मा मारेहु त्ति सावियाणमुवदेसदाणदो वा ण जिणा णिरवज्जा। अणसणोमोदरियउत्तिपरिसंखाण-रसपरिच्चाय-विवित्तसयणासण-रुक्खमूलादावणब्भावासुक्कुदासण-पलियंकद्ध-पलियंक-ठाण-गोण-वीरासण-विणय-वेज्जावच्च-सज्झायझाणादिकिलेसेसु जीवे पयिसारिय खलियारणादो वा ण जिणा णिरवज्जा तम्हा ते ण वंदणिज्जा त्ति ?

एत्थ परिहारो उच्चदे। तं जहा, जयवि एवमुवदिसंति तित्थयरा तो वि ण तेसिं कम्मबंधो अत्थि, तत्थ मिच्छत्तासंजमकसायपच्चयाभावेण वेयणीयवज्जा-सेसकम्माणं बंधाभावादो। वेयणीयस्स वि ण ट्ठिदिअणुभागबंधा अत्थि, तत्थ कसायपच्चयाभावादो। जोगो अत्थि त्ति ण तत्थ पयडिपदेसबंधाणमत्थित्तं वोत्तुं सक्किजदे ? ट्ठिदिबंधेण विणा उदयसरूवेण आगच्छमाणाणं पदेसाणमुवयारेण बंधववएसुवदेसादो। ण च जिणेसु देस-सयलधम्मोवदेसेण अज्जियकम्मसंचओ वि अत्थि, उदयसरूवकम्मागमादो असंखेज्जगुणाए सेढीए पुव्वसंचियकम्मणिज्जरं पडिसमयं करेंतेसु कम्मसंचयाणुववत्तीदो। ण च तित्थयरमण-वयण-कायवुत्तीओ इच्छापुव्वियायो जेण तेसिं बंधो होज्ज, किन्तु दिणयर-कप्परुक्खाणं पउत्तिओ व्व वयिससियाओ।[1]

आगे शंका—समाधान द्वारा चतुर्विंशतिस्तव का स्वरूप बतलाते हैं—

शंका—छह काय के जीवों की विराधना के कारणभूत श्रावकधर्म का उपदेश करने वाले होने से चौबीसों ही तीर्थंकर सावद्य अर्थात् सदोष हैं। आगे इसी विषय का स्पष्टीकरण करते हैं—दान, पूजा, शील और उपवास ये चार श्रावकों के धर्म हैं। यह चारों ही प्रकार का श्रावकधर्म छह काय के जीवों की विराधना का कारण है, क्योंकि भोजन का पकाना, दूसरे से पकवाना, अग्नि का सुलगाना, अग्नि का जलाना, अग्नि का खूतना और खुतवाना आदि व्यापारों से होने वाली जीवविराधना के बिना दान नहीं बन सकता है। उसी प्रकार वृक्ष का काटना और कटवाना, ईंट का गिराना और गिरवाना तथा उनको पकाना और पकवाना आदि छह काय के जीवों की विराधना के कारणभूत व्यापार के बिना जिनभवन का निर्माण करना अथवा करवाना नहीं बन सकता है तथा अभिषेक

1. कसायपाहुड़ (जयधवला) पृ. 100 से 102 तक।

करना, अवलेप करना, संमार्जन करना, चन्दन लगाना, फूल चढ़ाना और धूप का जलाना आदि जीववध के अविनाभावी व्यापारों के बिना पूजा करना नहीं बन सकता है।

प्रतिशंका—शील का रक्षण करना सावद्य कैसे है ?

शंकाकार—नहीं, क्योंकि अपनी स्त्री को पीड़ा दिये बिना शील का परिपालन नहीं हो सकता है, इसलिए शील की रक्षा भी सावद्य है।

प्रतिशंका—उपवास सावद्य कैसे है ?

शंकाकार—नहीं, क्योंकि अपने पेट में स्थित प्राणियों को पीड़ा दिये बिना उपवास बन नहीं सकता है, इसलिए उपवास भी सावद्य है।

अथवा, 'स्थावर जीवों को छोड़कर केवल त्रसजीवों को ही मत मारो' श्रावकों को इस प्रकार का उपदेश देने से जिनदेव निरवद्य नहीं हो सकते हैं।

अथवा अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, वृक्ष के मूल में, सूर्य के आताप में और खुले हुए स्थान में निवास करना, उत्कुटासन, पल्यंकासन, अर्धपल्यंकासन, खड्गासन, गवासन, वीरासन, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय और ध्यानादि क्लेशों में जीवों को डालकर उन्हें ठगने के कारण भी जिन निरवद्य नहीं है और इसलिए वे वन्दनीय नहीं है।

समाधान—यहाँ पर उपर्युक्त शंका का परिहार करते हैं। वह इस प्रकार है—यद्यपि तीर्थंकर पूर्वोक्त प्रकार का उपदेश देते हैं, तो भी उनके कर्मबंध नहीं होता हे, क्योंकि जिनदेव के तेरहवें गुणस्थान में कर्मबंध के कारणभूत मिथ्यात्व, असंयम और कषाय का अभाव हो जाने से वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष समस्त कर्मों का बंध नहीं होता है। वेदनीय कर्म का बंध होता हुआ भी उसमें स्थितिबंध और अनुभागबंध नहीं होता है, क्योंकि वहाँ पर स्थितिबंध और अनुभागबंध के कारणभूत कषाय का अभाव है। तेरहवें गुणस्थान में योग है, इसलिए वहाँ पर प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध के अस्तित्व का भी कथन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि स्थितिबंध के बिना उदयरूप से आने वाले निषेकों में उपचार से बंध के व्यवहार का कथन किया गया है। जिनदेव देशव्रती श्रावकों के और सकलव्रती मुनियों के धर्म का उपदेश करते हैं, इसलिए उनके अर्जित कर्मों का संचय बना रहता है, सो भी बात नहीं है, क्योंकि उनके जिन नवीन कर्मों का बंध होता है, जो कि उदयरूप ही हैं, उनसे भी असंख्यातगुणी श्रेणीरूप से वे प्रतिसमय पूर्वसंचित कर्मों की निर्जरा करते हैं, इसलिए उनके कर्मों का संचय नहीं बन

सकता है और तीर्थंकर के मन, वचन तथा काय की प्रवृत्तियाँ इच्छापूर्वक नहीं होती है, जिससे उनके नवीन कर्मों का बंध होवे। जिस प्रकार सूर्य और कल्पवृक्षों की प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक होती हैं, उसी प्रकार उनके भी मन, वचन और काय की प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक अर्थात् बिना इच्छा के समझना चाहिए।

तित्थयरस्स विहारो लोअसुहो णेव तत्थ पुण्णफलो।
वयणं च दाणपूजारंभयरं तं ण लेवेइ।।54।।

''तीर्थंकर का विहार संसार के लिए सुखकर है परन्तु उससे तीर्थंकरों को पुण्यरूप फल प्राप्त होता है, ऐसा नहीं है तथा दान और पूजा आदि आरंभ के करने वाले वचन, उन्हें कर्मबंध से लिप्त नहीं करते हैं। अर्थात् वे दान पूजा आदि आरंभों का जो उपदेश देते हैं, उससे भी उन्हें कर्मबंध नहीं होता है।

पावागमदाराइं अणाइरूवट्ठियार जीवम्मि।
तत्थ सुहासवदारं उग्घादेंते कउ सदोसो।।57।।

जीव में पापास्रव के द्वार अनादिकाल से स्थित हैं। उनके रहते हुए जो जीव शुभास्रव के द्वार का उद्घाटन करता है, अर्थात् शुभास्रव के कारणभूत कामों को करता है, वह सदोष कैसे हो सकता है ?

घडियाजलं व कम्मे अणुसमयसंखगुणियसेढीए।
णिज्जरमाणे संते वि महव्वईणं कुदो पावं।।60।।
परमरहस्समिसीणं समत्तगणिपिदयझरिदसाराणं।
परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंबमाणाणं।।61।।
वियोजयति चासुभिर्न न वधेन संयुज्यते,
शिवं च न परोपघातपरुषस्मृतेविद्यते।
वधोपनयमभ्युपैति च परानिघ्नन्नपि,
त्वयाऽयमतिदुर्गमः प्रशमहेतुरुद्योतितः।।62।।

तम्हा चउवीसं पि तित्थयरा णिरवज्जा तेण ते वंदणिज्जा विबुहजणेण।

सुरदुंदुहि-धय-चामर-सीहासण-धवलामलछत्त-भेरि-संख-काहलादिगंथ-कंथंतो वट्टमाणत्तादो तिहुवणस्सोलंगदाणदो वा ण णिरवज्जा तित्थयरा त्ति णासंकणिज्जं, घाइचउक्काभावेण पत्तणवकेवललद्धिविरायियाणं सावज्जेण संबंधाणुववत्तीदो। एवमायिए चउवीसतित्थयरविसयदुण्णये णिराकरिय चउवीसं पि तित्थयराणं थवणविहाणं णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावभेएण भिण्णं तत्फलं च चउवीसत्थओ परूवेदि।[1]

1. कसायपाहुड़ (जयधवला)

जब महाव्रतियों के प्रतिसमय घटिकायंत्र के जल के समान असंख्यातगुणित श्रेणीरूप से कर्मों की निर्जरा होती रहती है, तब उनके पाप कैसे संभव है ?।।60।।

समग्र द्वादशाङ्गका प्रधानरूप से अवलम्बन न करने वाले निश्चयनयावलम्बी ऋषियों के संबंध में यह एक मूल तत्त्व है कि वे अपनी शुद्धाशुद्ध चित्तवृत्ति को ही प्रमाण मानते हैं।।61।।

कोई प्राणी दूसरे को प्राणों से वियुक्त करता है फिर भी वह वध से संयुक्त नहीं होता है तथा परोपघात से जिसकी स्मृति कठोर हो गई है, अर्थात् जो परोपघात का विचार करता है, उसका कल्याण नहीं होता है तथा कोई दूसरे जीवों को नहीं मारता हुआ भी हिंसकपने को प्राप्त होता है। इस प्रकार हे जिन! तुमने यह अति गहन प्रशम का हेतु प्रकाशित किया है अर्थात् शांति का मार्ग बतलाया है।।62।।

इसलिए चौबीसों तीर्थंकर निरवद्य हैं और इसीलिए वे विबुधजनों से वन्दनीय हैं।

यदि कोई ऐसी आशंका करे कि तीर्थंकर सुरदुंदभि, ध्वजा, चमर, सिंहासन, धवल और निर्मल छत्र, भेरी, शंख तथा काहल (नगारा) आदि परिग्रहरूपी गूदड़ी के मध्य विद्यमान रहते हैं और वे त्रिभुवन के व्यवस्थापक हैं अर्थात् त्रिभुवन को सहारा देते हैं, इसलिए वे निरवद्य नहीं है, सो उसका ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि चार घातिकर्मों के अभाव से प्राप्त हुई नौ केवललब्धियों से वे सुशोभित हैं इसलिए उनका पाप के साथ संबंध नहीं बन सकता है। इत्यादिक रूप से चौबीसों तीर्थंकर विषयक दुर्नयों का निराकरण करके नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से भिन्न चौबीस तीर्थंकरों के स्तवन के विधान का और उसके फल का कथन चतुर्विंशतिस्तव करता है।

पंचामृत अभिषेक के अनेक प्रमाण

प्राकृत भावसंग्रह में श्री देवसेन सूरि ने कहा है–

अंगे णासं किच्चा, इंदो हं कप्पिऊण णियकाए।
कंकण-सेहर-मुद्दी, कुणओ जण्णोपवीयं च।।436।।

पीढं मेरुं कप्पिय, तस्सोवरि ठाविऊण जिणपडिमा।
पच्चक्खं अरहंतं, चित्ते भावेउ भावेण।।437।।

कलसचउक्कं ठाविय, चउसु वि कोणेसु णीरपरिपुण्णं।
घयदुद्धदहियभरियं, णवसयदलछण्णमुहकमलं।।438।।

आवाहिऊण देवे, सुरवइ-सिहि-काल-णेरिए-वरुणे।
पवणे जखे ससूली, सपियसवाहणे ससत्थे य।।439।।

दाऊण पुज्जदव्वं, बलिचरुयं तह य जण्णभायं च।
सव्वेसिं भंत्तेहि य, बीयक्खरणामजुत्तेहिं।।440।।

उच्चारिऊण मंते, अहिसेयं कुणउ देवदेवस्स।
णीर-घय-खीर-दहियं, खिवउ अणुक्कमेण जिणसीसे।।441।।

णहवणं काऊण पुणो, अमलं गंधोवयं च वंदित्ता।
सवलहणं च जिणिंदे, कुणऊ कस्सीरमलएहिं [1]।।442।।

ये देवसेन सूरि दर्शनसार के कर्ता देवसेन सूरि से जुदे हैं। दर्शनसार के कर्ता देवसेन सूरि ने दर्शनसार वि.सं. 990 में बनाया है। उसमें श्वेताम्बर संघ द्राविड़संघ, यापनीयसंघ, काष्ठासंघ आदि का उल्लेख है परन्तु प्राकृतभावसंग्रह में श्वेताम्बर संघ को छोड़कर औरों का उल्लेख नहीं है। यदि प्राकृत भावसंग्रह और दर्शनसार के कर्ता एक ही होते तो श्वेताम्बर संघ की तरह इन संघों का भी वे उल्लेख करते। इससे मालूम पड़ता है कि प्राकृतभाव संग्रह के कर्ता देवसेन सूरि और हैं तथा दर्शनसार के कर्ता देवसेन सूरि और। संभवतः प्राकृतभावसंग्रह और नयचक्र के कर्ता देवसेन सूरि एक हैं। नयचक्र का उल्लेख स्वामी विद्यानंदि श्लोकवार्तिक में करते हैं। विद्यानंदि स्वामी का समय करीब विक्रम की आठवीं शताब्दी का प्रारंभ सुनिश्चित होता है। इससे मालूम पड़ता है कि भावसंग्रह के कर्ता सातवीं शताब्दी से भी पहले हो गये

1. प्राकृत भाव संग्रह पृ. 96-97

हैं और उस समय हुए हैं जिस समय कि श्वेताम्बर संघ को छोड़कर काष्ठासंघ आदि की उत्पत्ति भी नहीं हुई थी।

पद्मपराुण में श्री रविषेणाचार्य ने कहा है–

अभिषेकं जिनेन्द्राणां, कृत्वा सुरभिवारिणा।
अभिषेकमवाप्नोति, यत्र यत्रोपजायते।।165।।

अभिषेकं जिनेन्द्राणां, विधाय क्षीरधारया।
विमाने क्षीरधवले, जायते परमद्युतिः।।166।।

दधिकुम्भैर्जिनेन्द्राणां, यः करोत्यभिषेचनम्।
दध्याभकुट्टमे स्वर्गे, जायते स सुरोत्तमः।।167।।

सर्पिषा जिननाथानां, कुरुते योऽभिषेचनम्।
कान्तिद्युतिप्रभावाढ्यो, विमानेशः स जायते।।168।।

अभिषेकप्रभावेण, श्रूयन्ते बहवो बुधाः।
पुराणेऽन्तवीर्याद्या, द्युभूलब्धाभिषेचनाः[1]।।169।।

1–इनने वीर नि. संवत् 1203 (वि.सं. 733, शक सं. 598) में इस पुराण को बनाया था। आचार्य रविषेण काष्ठासंघ के अनुयायी थे, ऐसी किंवदन्ती प्रचलित है परन्तु यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि काष्ठासंघ की वि.सं. 753 में कुमारसेन द्वारा उत्पत्ति हुई है ऐसा दर्शनसार में स्पष्ट उल्लेख है। अतः यह कैसे संभव माना जाए कि रविषेणाचार्य काष्ठासंघी थे। मूलसंघ और श्वेताम्बर संघ के आचार्यों ने इन की खूब ही प्रशंसा की है। इतना ही नहीं, इनके पद्मपुराण का आधार लेकर बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना की है।

हरिवंश पुराण में जिनसेनाचार्य कहते हैं–

क्षीरेक्षुरसधारौघै-र्घृतदध्युदकादिभिः।
अभिषिच्य जिनेन्द्रार्चा-मर्चितां नृसुरासुरैः।।21।।

हरिचन्दनगन्धाढ्यै - र्गन्धशाल्यक्षताक्षतैः।
पुष्पैर्नानाविधैरुद्धै-र्धूपैः कालागुरूद्भवैः।।22।।

दीपैर्दीप्रशिखाजालै-र्नैवेद्यैर्निरवद्यकैः।
तावानर्चतुरर्चां ता-मर्चनाविधिकोविदौ[2]।।23।।

1–आचार्य जिनसेन ने इस पुराण की रचना शक संवत् 705 (वि.सं.

1. पद्मपुराण भाग-2, पर्व 32, पृ. 97-98। 2. हरिवंशपुराण सर्ग-22, पृ. 320

840) में की है। ये जिनसेन आदिपुराण के कर्ता भगवज्जिनसेन से जुदे हैं।

वसुनंदि-श्रावकाचार में–

गब्भावयार-जम्माहिसेय-णिक्खमण-णाण-णिव्वाणं।
जम्हि दिणे संजादं, जिणण्हवणं तद्दिणे कुज्जा।।453।।

इक्खुरस-सप्पि-दहि-खीर-गंधजलपुण्णविविहकलसेहिं।
णिसिजागरणं च संगीय-णाडयाईहिं कायव्वं।।454।।

णंदीसरट्ठदिवसेसु तहा अण्णेसु उचियपव्वेसु।
जं कीरइ जिणमहिमं, विण्णेया कालपूजा सा[1]।।455।।

1–आचार्य वसुनन्दी का समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी है। इनने मूलाचार की आचारवृत्ति में आचार्य अमितगति-कृत श्रावकाचार के कुछ पद्य उद्धरण में दिये हैं। आचार्य अमितगति 1070 के बाद तक जीवित थे। इनने एक मूलाराधना या भगवती-आराधना नाम का ग्रन्थ भी संस्कृत में लिखा है। उसमें उनने इस आराधना की पुष्टि में ''वसुनन्दियोगिमहिता'' ऐसा एक पद दिया है, इससे मालूम पड़ता है कि वसुनन्दी और अमितगति दोनों समसामयिक हैं और वह समय विक्रम की ग्यारहवीं सदी है।

नागकुमार चरित्र पंचमी कथा में मल्लिषेण आचार्य ने कहा–

कारयित्वा जिनेन्द्राणां, सद्बिम्बं स्नापयन्ति ये।
चोचेक्ष्वाम्ररसैर्नित्य-माज्यदुग्धादिभिस्तथा ।।112।।
पूजयन्ति च ये देवं, नित्यमष्टाविधार्चनैः।
पूजां देवनिकायस्य लभन्ते तेऽन्यजन्मनि।।113।।[2]

1–आचार्य मल्लिषेण उभयभाषा के चक्रवर्ती थे, पद्मावती और सरस्वती इन पर प्रसन्न थीं। त्रिषष्टिलक्षण-महापुराण, स्वोपज्ञ टीका युक्त पद्मावतीकल्प, सरस्वतीकल्प आदि अनेक ग्रंथ इनके बनाए हुये हैं। इनमें त्रिषष्टिलक्षण महापुराण को शक संवत 969 वि.सं. 1104 में इनने बनाया था और शक संवत् 1050 वि.स. 1185 में इनका स्वर्गवास हुआ था। इससे मालूम पड़ता है कि ये कम से कम शतायु थे।

जिनसंहिता में भगवद् एकसंधि ने कहा–

ततस्तुर्यरवैर्व्योम-सरत्युद्दामगीतिभिः।
अप्युद्धरेन्मुदा पूर्ण-कुम्भं स्नपयितुं प्रभुम्।।1।।

1. वसुनंदिश्रावकाचार पृ. 130। 2. नागकुमार चरित्र पंचमी कथा (मल्लिसेण सूरिकृत)

तोयैश्चोचजलैरिक्षु-रसैश्चूतरसैर्घृतैः।
क्षीरैर्दधिभिरप्यर्घ्यैः ,स्नापयेदनघं क्रमात्।।2।।

तत उन्मार्जयेत्कल्क-चूर्णैश्चोद्वर्तनैरलम्।
जिनेन्द्र श्रीतनुस्नेहं, चन्दनक्षोदशालिभिः।।3।।

वर्णोदनादिभिःपश्चा-द्वीतदोषं निवर्तयेत्।
निवर्तनविधिद्रव्यै-र्जगतामभिवृद्धये ।।4।।

ततः क्षीरतरुत्वग्भिः, कषायैः स्नमयेज्जलैः।
ततः संस्नापयेत्कुम्भैश्-चतुर्भिः कोणसंश्रितैः।।5।।

जलादिस्नपने निष्ठां, गते गन्धाम्बुधारया।
अभिषिच्येशमर्हन्त-ममलं त्रिजगद्गुरुम्।।6।।[1]

1–इनका आसन जैन समाज में बहुत ऊँचा रहा है। यह पीछे के ग्रंथकर्ताओं के स्मरण से प्रतीत होता है। जिनसंहिता की कई प्रतियाँ हमने देखी हैं वे सब अपूर्ण हैं। सबमें अन्तिम पाठ भी समान है। अतः नहीं कहा जा सकता कि प्रति का अंतिम पाठ नष्ट हो गया या काल के वैचित्र्य से यहीं तक बन पाई थी। अस्तु, भगवदेकसंधि का समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के लगभग है। इतना निश्चित है कि वि.स. 1376 के पहले यह संहिता बन चुकी थी।

संस्कृत भावसंग्रह में श्री वामदेव पंडित ने कहा–

पश्चात्स्नानविधिं कृत्वा, धौतवस्त्रपरिग्रहः।
मंत्रस्नानं व्रतस्नानं, कर्तव्यं मंत्रवत्ततः[2]।।470।।
एवं स्नानत्रयं कृत्वा, शुद्धित्रयसमन्वितः।
जिनावासं विशेन्मंत्री, समुच्चार्य निषेधिकाम्।।471।।
कृत्वेर्यापथसंशुद्धिं, जिनं स्तुत्वातिभक्तितः।
उपविश्य जिनस्याग्रे, कुर्याद्विधिमिमां पुरा।।472।।
तत्रादौ शोषणं स्वांगे, दहनं प्लावनं ततः।
इत्येवं मंत्रविन्मंत्री, स्वकीयाङ्गं पवित्रयेत्।।473।।

1. जिनसंहिता परिच्छेद-10। 2. संस्कृत भावसंग्रह, पृ. 196 से 198 तक।

हस्तशुद्धिं विधायाथ, प्रकुर्यात्सकली-क्रियाम्।
कूटबीजाक्षरैर्मंत्रै-र्दशदिग्बंधनं ततः।।474।।
पूजापात्राणि सर्वाणि, समीपीकृत्य सादरम्।
भूमिशुद्धिं विधायोच्चै, र्दर्भाग्निज्वलनादिभिः।।475।।
भूमिपूजां च निर्वृत्य, ततस्तु नागतर्पणम्।
आग्नेयदिशि संस्थाप्य, क्षेत्रपालं प्रतर्प्य[1] च ।।476।।
स्नानपीठं दृढं स्थाप्य, प्रक्षाल्य शुद्धवारिणा।
श्रीबीजं च विलिख्यात्र, गन्धाद्यैस्तत्प्रपूजयेत्।।477।।
परितः स्नानपीठस्य, मुखार्पितसपल्लवान्।
पूरितांस्तीर्थसत्तोयैः, कलशांश्चतुरो न्यसेत्।।478।।
जिनेश्वरं समभ्यर्च्य, मूलपीठोपरिस्थितम्।
कृत्वाह्वानविधिं सम्यक्, प्रापयेत् स्नानपीठिकाम्।।479।।
कुर्यात्संस्थापनं तत्र, सन्निधानविधानकम्।
नीराजनैश्च निर्वृत्य, जलगंधादिभिर्यजेत्।।480।।
इन्द्राद्यष्टदिशापालान्, दिशाष्टसु निशापतिम्।
रक्षोवरुणयोर्मध्ये, शेषमीशानशक्रयोः ।।481।।
न्यस्याह्वानादिकं कृत्वा, क्रमेणैतान् मुदं नयेत्।
बलिप्रदानतः सर्वान्, स्वस्वमंत्रैर्यथादिशम् ।।482।।
ततः कुंभं समुद्धार्य, तोयचोचेक्षुसद्रसैः।
सद्घृतैश्च ततो दुग्धै-र्दधिभिः स्नापयेज्जिनम्।।483।।
तोयैः प्रक्षाल्य सच्चूर्णैः, कुर्यादुद्वर्त्तनक्रियाम्।
पुनर्नीराजनं कृत्वा, स्नानं कषायवारिभिः।।484।।
चतुष्कोणस्थितैः कुम्भै-स्ततो गन्धाम्बुपूरितैः।
अभिषेकं, प्रकुर्वीरन्, जिनेशस्य सुखार्थिनः।।485।।
स्वोत्तमांगं प्रसिंच्याथ, जिनाभिषेकवारिणा।
जलगन्धादिभिः पश्चा-दर्चयेद्बिम्बमर्हतः ।।486।।

1. प्रतृप्य इति पाठान्तरं।

स्तुत्वा जिनं विसर्ज्यापि, दिगीशादिमरुद्गणान्।
अर्चिते मूलपीठेऽथ, स्थायपेज्जिननायकम्।।487।।

1–पण्डित वामदेव का समय लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। 1539 की लिखी हुई पंजिका की एक प्रति है और 1488 की लिखी हुयी प्रा. भावसंग्रह की प्रति में इनके बनाए हुए भावसंग्रह के श्लोक प्रक्षिप्त हैं। इससे मालूम पड़ता है कि वि.सं. 1539 और 1488 के पूर्ववर्ती लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के ये विद्वान हैं। मूलसंघ में एक विनयचन्द्र नाम के आचार्य हो गये हैं, उनके शिष्य त्रिलोककीर्ति और त्रिलोककीर्ति के शिष्य लक्ष्मीचन्द्र हुए हैं। इन्हीं त्रिलोककीर्ति और लक्ष्मीचन्द्र के पंडित वामदेव शिष्य थे। इनका कुल नैगम कुल था। इनके बनाए हुए त्रिलोकदीपक, संस्कृत भावसंग्रह, महाभिषेक पंजिका आदि ग्रन्थ हैं।

वरांगचरित में वर्धमान भट्टारक आचार्य ने कहा–

यः संस्थाप्य जिनेशं, विधिवत्पंचामृतैर्जिनं यजते।
जलगन्धाक्षतपुष्पै-र्नैवेद्यैर्दीपधूपफलनिवहैः ।।16।।
यो नित्यं जिनमर्चति, स एव धन्यो निजेन हस्तेन।
ध्यायति मनसा शुचिना, स्तौति च जिह्वागतैः स्तोत्रैः।।17।[1]।

श्रीपालचरित्र में सकलकीर्ति आचार्य ने कहा–

कृत्वा पंचामृतैर्नित्य-मभिषेकं जिनेशिनाम्।
ये भव्याः पूजयन्त्युच्चै-स्ते पूज्यन्ते सुरादिभिः।।[2]

1–आचार्य सकलकीर्ति आचार्य पद्मनंदी के पट्ट पर हुए हैं। इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाए हैं जो जैन समाज में बड़ी ही भक्ति के साथ पढ़े जाते हैं। इतना ही नहीं, ये बहुत ही प्रामाणिक भी माने जाते हैं। वि.सं. 1490 और 1492 की इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ भी पाई जाती हैं। सुनते हैं, इनका स्वर्गवास 1499 में गुजरात के महसाना नगर में हुआ था। कहते हैं, वहाँ इनकी समाधि भी बनी हुई है।

मूर्ध्ना गत्वानु संस्नाप्या-मृतैः पंचविधैर्वरैः।
जिनेन्द्रप्रतिमां भक्त्या, पूजयेत्स्वशुभाप्तये।।

1. वरांगचरित सर्ग-12। 2. श्रीपाल चरित।

उपदेशरत्नमाला में पंडिताचार्य सकलभूषण[1] ने कहा–

पंचामृतैः सुमंत्रेण, मंत्रितैर्भक्तिनिर्भरः।
अभिषिच्य जिनेन्द्राणां, प्रतिबिम्बानि पुण्यवान्।।(1)

णमोकारकल्प में श्री सिंहनंदि[2] ने कहा है–

पूजाद्रव्यं कुंकुमं च, सदकं चस्संचयं।
रत्नदीपकं वामे च, धूपकुंडं च दक्षिणे।।
फलं देयं जिनेशस्य, पुरतो बीजपूरकं।
चूतं चोचाम्रकदली-मुखं षट्कर्तुषु क्रमात्।।
कंकोलैलालवंगादि-सर्वौषध्याभिषेचनं ।
दधिदुग्धेक्षुसर्पिर्भि-रभिषेको जिनस्य च।।(2)

पद्मपुराणभाषा में पं. दौलतराम जी ने लिखा है–

जो नीर कर जिनेन्द्र का अभिषेक करै सो देवों कर मनुष्यों कर सेवनीक चक्रवर्ती होय, जिसका राज्याभिषेक देव विद्याधर करैं और जो दुग्धकर अरहंत का अभिषेक करै सो क्षीरसागर के जल समान उज्वल विमान के विषैं परम कांति धारक देव होय फिर मनुष्य होय मोक्ष पावै और जो दधिकर सर्वज्ञ वीतराग का अभिषेक करै सो दधिसमान उज्ज्वल यश को पाय कर भवोदधि को तरै और जो घृत कर जिननाथ का अभिषेक करै सो स्वर्ग विमानविषैं महाबलवान् देव होय परंपराय अनन्तवीर्य को धरै और जो ईष रस कर जिननाथ का अभिषेक करै सो अमृत का आहारी सुरेश्वर होय। नरेश्वर पद पाय मुनीश्वर होय अविनश्वर पद पावै। अभिषेक के प्रभाव कर अनेक भव्यजीव देवों कर इंद्रों कर अभिषेक पावते भये तिनकी कथा पुराणों में प्रसिद्ध है।(3)

1–पद्मपुराण की भाषा पं. दौलतराम जी ने वि.सं. 1823 में बनाई है। पद्मपुराण के मूलश्लोकों का यह अनुवाद है। यह भाषा जैन समाज में अत्यधिक आदरणीय मानी जाती है। पं. दौलतराम जी जयपुर की तेरहपंथ शैली में एक

1. इनने वि.सं. 1627 में इस ग्रंथ की रचना की थी। ये आचार्य सकलकीर्ति की परम्परा में हुए हैं। भट्टारक शुभचन्द्र के ये शिष्य थे। ग्रंथरचना के समय शुभचन्द्र के पट्ट पर सुमत्किीर्ति थे। वि. 1626 में सुमतिकीर्ति विरक्त हो गये थे और गुणकीर्ति को अपने पट्ट पर अभिषिक्त कर दिया था, ऐसा भिलोड़ा (गुजरात) के बावन जिनालय आदि के वर्णन में स्वयं सकलभूषण नेंलिखा है। 2. इनने वि. सं. 1667 में यह कल्प बनाया है। अतः इनका समय विक्रम की सतरहवीं शताब्दी है। ये सेनसंघ के थे। इनकी परम्परा वगैरह पुस्तक इस समय पास न होने से नहीं दे सके हैं।

(1) उपदेशरत्नमाला। (2) णमोकारकल्प। (3) पद्मपुराण भाषा, पर्व 32, श्लोक 165-169

समादृत विद्वान थे।

वसुनंदि-श्रावकाचार भाषा में बाबा दुलीचन्द जी[1] ने कहा है–

भगवान का गर्भावतार अर जन्माभिषेक, तपकल्याण, ज्ञानकल्याण, निर्वाणकल्याण जिस दिन विषैं हुवा तिह दिन विषै कलशाभिषेक अर प्रभावना करणी। इक्षुरस, घृत, दही, दूध, सुगंध जल का पवित्र नाना प्रकार का कलशां करि अभिषेक करणा। बहुरि रात्रि विषैं जागरण संगीत नाटकादिक जो संगीत नृत्य तथा गानादिक करणा। अर नंदीश्वर के आठ दिन विषैं तथा और भी उचित परव्या विषैं जो करै भगवान की महिमा सो काल पूजा जाणनी, या कालपूजा कही।(1)

कलस चउक्कं ठाविय चउसु वि कोणेसु णीरपरिपुण्णं।
घयदुद्धदहियभरियं णवसयदलछण्णमुहकमलं।।
कलश चतुष्कं स्थापयित्वा चतुर्ष्वपि कोणेषु नीरपरिपूर्णं।
घृतदुग्धदधिभृतं नवशतदलच्छन्नमुखकमलं।।438।।(2)

संक्षिप्त अर्थ–तदनंतर चारों कोनों में जल से भरे हुए चार कलश स्थापन करने चाहिए तथा मध्य में पूर्ण कलश स्थापन करना चाहिए। इनके अतिरिक्त घी, दूध, दही इनसे भरे हुए कलश भी स्थापन करने चाहिए। इन सब कलशों के मुख पर नवीन सौ दल वाले कमल रखने चाहिए।

उच्चरिऊण मंते अहिसेयं कुणउ देवदेवस्स।
णीरघयखीरदहियं खिवउ अणुक्कमेण जिणसीसे।।
उच्चार्य मंत्रान् अभिषेकं कुर्यात् देवदेवस्य।
नीरघृतक्षीरदधिकं क्षिपेत् अनुक्रमेण जिनशीर्षे।।441।।(3)

तदनंतर देवाधिदेव भगवान अरहंत देव का अभिषेक करना चाहिए। वह अभिषेक अनुक्रम से जल, घी, दूध, दही आदि पदार्थों से मंत्रों का उच्चारण करते हुये भगवान के मस्तक पर से करना चाहिए।

ण्हवणं काऊण पुणो अमलं गंधोवयं च वंदित्ता।
सवलहणं च जिणिंदे कुणऊ कस्सीरमलएहिं।।

1. बाबा जी ने यह भाषा कौन से सम्वत् में बनाई थी। यह हमारे पास की प्रति का अंतिम पत्र गायब हो जाने से नहीं लिख सके हैं। बाबाजी इसी बीसवीं शताब्दी में करीब 20-25 वर्ष कम तक जीवित थे। संभवतः वे यह भाषा 1955 के पहले किसी समय में बना चुके थे।

(1) वसुनंदि श्रावकाचार, पत्र 81, गाथा नं. 53-54-55। (2-3) प्राकृत भावसंग्रह पृ. 96-97

स्नपनं कारयित्वा पुनः अमलं गन्धोदकं च वन्दित्वा।
उद्वर्तनं च जिनेन्द्रे कुर्यात् काश्मीरमलयैः।।442।।[1]

अर्थ—इस प्रकार अभिषेक कर निर्मल गंधोदक की वंदना करनी चाहिए फिर काश्मीरी केसर तथा चंदन आदि से भगवान का उद्वर्तन करना चाहिए। अभिषेक के अनंतर चन्दन, केसर आदि द्रव्यों की सर्वौषधि बनाकर उससे प्रतिमा का उबटन करना चाहिए। फिर कोण कलशों से तथा पूर्ण कलश से अभिषेक करना चाहिए। यह विधि अत्यंत संक्षेप से कही है। इसकी पूर्ण विधि अभिषेक पाठ से जान लेनी चाहिए।

इय संखेवं कहियं जो पूयइ गंधदीवधूवेहिं।
कुसुमेहि जवइ णिच्चं सो हणइ पुराणयं पावं।।

इति संक्षेपेण कथितं यः पूजयति गन्धदीपधूपैः।
कुसुमैः जपति नित्यं स हन्ति पुराणकं पापं।।447।।[2]

अर्थ—इस प्रकार संक्षेप से सिद्धचक्र का विधान कहा। जो पुरुष गंध, दीप, धूप और फूलों से इस यंत्र की पूजा करता है तथा नित्य इसका जप करता है वह पुरुष अपने संचित किये हुये समस्त पापों का नाश कर देता है।

घृतक्षीरादिभिः पूर्णाः कलशाः कमलाननाः।
मुक्तादामादिसत्कंठा रत्नरश्मिविराजिताः।।14।।
जिनबिम्बाभिषेकार्थ-माहूता भक्तिभासुराः।
दृश्यंते भोगिगेहेषु शतशोऽथ सहस्रशः।।15।।[3]

अर्थ—जो घी, दूध आदि से भरे हुए थे, जिनके मुख पर कमल ढके हुए थे, जिनके कण्ठ में मोतियों की मालाएँ लटक रही थी, जो रत्नों की किरणों से सुशोभित थे, जो नाना प्रकार के बेल-बूटों से देदीप्यमान थे तथा जो जिन-प्रतिमाओं के अभिषेक के लिए इकट्ठे किये गये थे, ऐसे सैकड़ों हजारों कलश गृहस्थों के घरों में दिखाई देते थे।

भावार्थ—लंका में स्थित शांतिनाथ चैत्यालय में भक्तिमान लंका के लोग घृत, दुग्ध, दधि आदि से भरे हुए कलश जिनके कि कंठ भाग मोतियों की माला से सुशोभित हो रहे हैं, जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के लिए लाये।

पयोदधिक्षीरघृतादिपूर्णा फलाग्रपुष्पस्तवकापिधानाः।
घटावलीदामनिबद्धकंठा सुवर्णकारैर्लिखिता रराज।।25।।[4]

1-2. प्राकृत भाव संग्रह, पृ. 97-98। 3. पद्मपुराण, सर्ग 68। 4. वरांगचरित्र, सर्ग 23।

अष्टोत्तराशीतजलैर्प्रपूर्णाः सहस्रमात्राः कलशाः विशालाः।
पद्मोत्पलोत्फुल्लविधानवक्त्रा जिनेन्द्रबिम्बस्नपनैक कार्या।।26।।[1]

भावार्थ—उस मंदिर में जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के लिए लाये गये जल, दही, दूध, घृत से पूर्ण कलश महान शोभा को प्राप्त हुए, जिनके मुखाग्र भाग कमल पुष्पों से आच्छादित थे।

तथा चकारात् पाषाणघटितस्याऽपि जिनबिम्बस्य पंचामृतैः स्नपनं अष्टविधैः पूजाद्रव्यैश्च पूजनं कुरुत यूयम् वन्दनाभक्तिश्च कुरुत।[2]

भावार्थ—पाषाण घटित भी जिनबिम्ब का पंचामृत से अभिषेक तथा आठ प्रकार के पूजन द्रव्यों से पूजन करना चाहिए।

द्राक्षाखर्जूरचोचेक्षु प्राचीनामलकोद्भवैः।
राजादनाम्रपूगोत्थै स्नापयामि जिनं रसैः।।[3]

भावार्थ—मैं इक्षु आदि रसों से भगवान का अभिषेक करता हूँ।

तद्विलेपनगंधांबुपुष्पाणि सा ददौ मुदा।
श्रीपालायांगरक्षेभ्यः पाणिभ्यां रुग्विहानये।।[4]

अर्थात् उस मैना सुंदरी से कुष्ट रोग से पीड़ित अपने पति श्रीपाल राजा तथा उनके सात सौ वीरों को उनके रोग के निवारणार्थ चंदन, अभिषेक का जल तथा पुष्प दिये।

प्राकृत निर्वाणभक्ति में श्री कुंदकुंददेव ने लिखा है—

गोम्मटदेवं वंदमि, पंचसयं धणुहदेहउच्चं तं,
देवा कुणंति वुट्ठी, केसरकुसुमाण तस्स उवरिम्मि।।27।।[5]

अर्थात् जिस गोम्मटेश की प्रतिमा के ऊपर देव लोग केशर और पुष्प की वर्षा किया करते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। इस तरह बड़े-बड़े विद्वान आचार्यों के बनाये हुए ग्रंथों में केशर और पुष्प का वर्णन मिलता है। जो यथार्थ एवं आर्षमार्गानुसार है।

卐 卐 卐

1. वरांगचरित्र, सर्ग 23। 2. भगवत्कुंदकुंदाचार्य कृत षट्पाहुड़, संस्कृत टीका, पेज 85। 3. सोमदेव सूरि कृत यशस्तिलक महाकाव्य अष्टमोच्छास। 4. श्रीपाल चरित्र। 5.प्राकृत निर्वाणभक्ति

चंदन पूजा का महत्त्व

श्री चन्दनं विनानैव, पूजां कुर्यात्कदाचन।
प्रभाते घनसारस्य, पूजा कार्या विचक्षणैः।।125।।[1]

अर्थ–श्री जिनेन्द्र देव की पूजा बिना चन्दन के कभी नहीं करनी चाहिए। चतुर पुरुषों को प्रातः काल के समय चन्दन से पूजा अवश्य करनी चाहिए।

भावार्थ–प्रातः काल में भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा उनके चरणारविंद के अंगुष्ट पर चन्दन लगाकर करनी चाहिए। यद्यपि भगवान की पूजा अष्टद्रव्य से की जाती है और वह अभिषेक पूर्वक ही होती है तथापि अभिषेक के बाद चरणों पर चंदन लगाना आवश्यक माना जाता है। यदि अष्टद्रव्य का समागम न मिले तो केवल भगवान के चरण के अंगूठे पर चंदन लगाने से ही भगवान की पूजा समझी जाती है। यदि भगवान के चरणों पर चंदन न लगाया जाये और बिना चंदन लगाये ही पूजा की जाती है तो वह पूर्ण पूजा नहीं समझी जाती, प्रातःकाल के समय चंदन पूजा ही मुख्य मानी गई है।

चरणों में चंदन लेपन के प्रमाण–

कंकोलकैलागुरुसप्रयंगूलवंगकर्पूरकरंजितेन।
श्रीखण्डपंकेन निरस्तशंकं, जिनक्रमाब्जं, परिलेपयामि।।

शीतल चीनी, इलाचयी, अगर, प्रियंगू, लौंग, कपूर, केसर आदि सुगंधित पदार्थों से मिले हुये चन्दन से श्री जिनेन्द्रदेव के चरण कमलों की पूजा करनी चाहिए। उन चरणों के अंगूठे पर चन्दन लगाना चाहिए।

सुचन्दनेन कर्पूर - व्यामिश्रेण सुगंधिना।
व्यालिंपामो जिनस्यांघ्रीन्, निलिंपाधीश्वरार्चितान्।।

चंदन केसर और कपूर से मिले हुये सुगंधित द्रव्य से भगवान के चरण कमलों का लेप करना चाहिए।

काश्मीरकर्पूर - सुगन्धितेन, सुगंधघनसार - विलेपनेन।
पादाब्जयुग्मं हि विलेपयामि, भक्त्या जिनस्य करुणायुतस्य।[2]**।**

अर्थ–केसर, कपूर, सुगंधित चन्दन आदि द्रव्यों से मैं करुणासागर भगवान जिनेन्द्रदेव के दोनों चरण कमलों का लेप करता हूँ।

1. उमास्वामी श्रावकाचार, पृ. 47। 2. जिनसंहिता-3 श्लोक (उमास्वामी श्रावकाचार में पृ. 48 पर)

कप्पूर कुंकुमायरु तलक्कमिस्सेण चंदण रसेण।
परवहल परिमलम लिंपामो जिणस्स चरणं।।

अर्थ–कपूर, केसर, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों के रस से भगवान जिनेन्द्र के चरण कमलों पर लेप कर उनको सुगंधित करता हूँ।

पद्मचंपकजात्यादि-स्रग्भिः संपूजयेज्जिनान्।
पुष्पाभावे प्रकुर्वीत, पीताक्षतभवैः समैः।।129।।[1]

अर्थ–कमल, चम्पा, चमेली आदि पुष्पों की माला बनाकर उनसे भगवान की पूजा करनी चाहिए तथा पुष्पों के अभाव में अक्षतों को केसर से पीले कर और उन्हें पुष्प मानकर उनसे पूजा करनी चाहिए।

दूध से अभिषेक के लिए गाय देना, मंदिर में कुंआ बनवाना और फूल से पूजा के लिए वाटिका बनवाना गुण है।

पयोर्थं गां जलार्थं च, कूपं पुष्पसुहेतवे।
वाटिकां संप्रकुर्वन्ना, नाति दोषधरो भवेत्।।133।।

अर्थ–भगवान जिनेन्द्र देव का अभिषेक करने के लिए सुगमता से दूध की प्राप्ति हो जाये इसके लिए गाय का रखना या जिनालय में गाय को दान देना दोषाधायक अर्थात् दोष करने वाला नहीं है। इसी प्रकार पूजा में सुगमता से पुष्पों की प्राप्ति के लिए बाग-बगीचा बनवाने में भी दोष नहीं है। पूजा के लिए सुगमता से जल मिलता रहे इसके लिए कुँआ बनवाने में भी अत्यन्त दोष नहीं होता है।

भावार्थ–यद्यपि जैन शास्त्रों में कुँआ खुदवाने का तथा बगीचा लगवाने का निषेध है इसी प्रकार गाय को दान देने का भी निषेध है, क्योंकि इन सब कामों में हिंसा अवश्य और अधिकता के साथ होती है। परन्तु यहां पर जो इसका विधान लिखा है वह केवल सुगमता के साथ भगवान की पूजा सदा होती रहने के लिए लिखा है। उद्देश्य भिन्न-भिन्न होने से एक ही क्रिया से पुण्य-पाप दोनों हो सकते हैं। केवल खा-पीकर मस्त होने के लिए भोजन बनाना पाप है। परंतु मुनियों को दान देने के लिए भोजन बनाना पुण्य का कारण है। इसी प्रकार मृतक को वैतरणी नदी से पार कर देने के लिए गाय का दान मिथ्यात्व व पाप है, परन्तु भगवान का अभिषेक सुगमता के साथ सदा होते रहने के लिए गाय का दान देना पुण्य का कारण है। इसी प्रकार कुँआ खुदवाने और बगीचा लगाने में अधिक हिंसा होती है, परन्तु भगवान की पूजा करने के लिए कुँआ, बगीची बनवाना

1. उमास्वामी श्रावकाचार, पृ. 51 से 55 तक, श्लोक 129, 133 से 139 तक।

पुण्य का ही कारण माना जाता है जिस प्रकार पूजा करने में भी हिंसा होती है, परन्तु इन कामों के करने में अनेक जीवों को महापुण्य का बंध होता है और इसीलिए भव्य जीव बड़ी भक्ति से इन कामों को करते हैं इसी प्रकार जिनालय में गाय का दान देना तथा जिनालय के लिए कुँआ, बगीची बनवाना पुण्य का ही कारण है। पुण्य-पाप भावों से होता है तथा मिथ्यात्व और सम्यक्त्व भी भावों से ही होता है। इन सब बातों को समझकर मोक्ष के कारणभूत पुण्यकार्य सदा करते रहना चाहिए।

शुद्धतोयेक्षुसर्पिभि-र्दुग्धदध्याम्रजैः रसैः।
सर्वोषधिभिरुच्चूर्णैर्भावात्संस्नपायेज्जिनम्।।134।।

अर्थ—शुद्ध जल, इक्षुरस, घी, दूध, दही, आम्ररस, सर्वोषधि और कल्क-चूर्ण आदि से भगवान जिनेन्द्र देव का अभिषेक करना चाहिए और वह भी बड़ी भक्ति तथा भावपूर्वक करना चाहिए।

पूज्यपूजावशेषेण, गोशीर्षेण हृतालिना।
देवाधिदेवसेवायै, स्ववपुश्चर्चयेत्सदा।।135।।

अर्थ—जो भगवान की पूजा करने के बाद बच रहा है और जिस पर भ्रमर आ रहे हैं ऐसे चन्दन से पूजा करने वाले को भगवान की पूजा करने के लिए अपने शरीर को चर्चित करना चाहिए।

भावार्थ—अभिषेक के बाद भगवान के चरणों पर चन्दन लगाना चाहिए और आगे अष्टद्रव्य से पूजा करने के लिए उस बचे हुये चन्दन से फिर दुबारा तिलक लगाना चाहिए।

स्नानैर्विलेपनविभूषणपुष्पवास - धूपप्रदीपफलतंदुलपत्रपूगैः।
नैवेद्यवारिवसतैश्चमरातपत्र - वादित्रगीतनटस्वास्तिककोशवृध्या।।136।।
इत्येकविंशतिविधाजिनराजपूजा-यद्यत्प्रियं तदिह भाववशेन योज्यम्।
द्रव्याणि वर्षाणि तथा हि कालाः, भावा सदा नैव समा भवन्ति।।137।।

अर्थ—भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा इक्कीस प्रकार से की जाती है। आगे उन्हीं को बतलाते हैं। 1. पंचामृताभिषेक करना, 2. चरणों पर चंदन लगाना, 3. जिनालय को सुशोभित करना, 4. भगवान के चरणों पर पुष्प चढ़ाना, 5. वास पूजा करना, 6. धूप से पूजा करना, 7. दीपक से पूजा करना, 8. अक्षतों से पूजा करना, 9. तांबूल पत्र से पूजा करना, 10. सुपारियों से पूजा करना, 11. नैवेद्य से पूजा करना, 12. जल से पूजा करना, 13. फलों से पूजा

करना, 14. शास्त्र पूजा में वस्त्र से पूजा करना, 15. चमर ढुलाना, 16. छत्र फिराना, 17. बाजे बजाना, 18. भगवान की स्तुति को गाकर कहना, 19. भगवान के सामने नृत्य करना, 20. सांथिया करना, 21. और भण्डार में द्रव्य देना। इस प्रकार इक्कीस प्रकार की विधि से भगवान की पूजा की जाती है। अथवा जिसको जो पसंद हो उसी से भावपूर्वक भगवान की पूजा करनी चाहिए। जैसे किसी को सितार बजाना पसंद है तो उसको भगवान के सामने ही सितार बजाना चाहिए। इसका भी कारण यह है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये सबके सदा समान नहीं रहते इसलिए अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार भगवान की पूजा सदा करते रहना चाहिए। बिना पूजा के अपना कोई समय व्यतीत नहीं करना चाहिए।

शान्तौ श्वेतं जये श्यामं, भद्रे रक्तं भये हरित्।
पीतं धनादि-संलाभे, पंचवर्णं तु सिद्धये।।138।।

अर्थ—नवग्रह आदि की शांति के लिए अथवा पाप कर्मों की शांति के लिए सफेद वस्त्रों को धारण कर सफेद माला से जप करना चाहिए। विजय चाहने के लिए श्याम रंग की माला से जप करना चाहिए। कल्याण के लिए लाल रंग की माला से जप करना चाहिए। भय दूर करने के लिए हरे रंग की माला से जप करना चाहिए। धनादिक की प्राप्ति के लिए पीले रंग की माला से जप करना चाहिए। तथा अपने अभीष्ट सिद्धि के लिए पंचवर्ण की माला से जप करना चाहिए। यदि माला के बदले उसी रंग के पुष्पों से जप किया जाये तो उस कार्य की सिद्धि बहुत शीघ्र हो जाती है। वस्त्र, आसन आदि भी उस रंग के होने चाहिए।

खण्डिते गलिते छिन्ने, मलिने चैव वाससि।
दानं पूजा जपो होमः, स्वाध्यायो विफलं भवेत्।।139।।

अर्थ—खण्डित वस्त्र (वस्त्र का टुकड़ा), गला हुआ वस्त्र, फटा हुआ वस्त्र और मैला वस्त्र पहन कर दान, पूजा, जप, होम और स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। फटे-पुराने, गले-सड़े वस्त्र पहनकर दान-पूजा आदिक करने से वह दान-पूजा आदि सब निष्फल हो जाता है।

जैनक्रमाब्जयुगयोगविशुद्धगंध, संबंधबंधुरविलेपपवित्रगात्रः।
तेनैव मुक्तिवशकृत्तिलकं विधाय, श्रीपादपुष्पधरणं शिरसा वहामि[1]।।

---

1. भगवत् इन्द्रनन्दि कृत पूजासार।

अर्थात् जिन भगवान के चरणों पर चढ़ने से पवित्र गंध के संबंध से मनोहर विलेपन करके पवित्र शरीर वाला मैं उसी चन्दन से मुक्ति के कारणभूत तिलक को करके चरणों पर चढ़े हुए पुष्पों को मस्तक पर धारण करता हूँ।

इमैः संतापार्चिः सपदिजयदृप्तैः परिमल-
प्रथामूर्च्छद्घ्राणैरनिमिषदृगं शुव्यतिकरात्।।
स्फुरत्पीतच्छायैरिव शमनिधे चन्दनरसैः,
विलिंपेयं पेयं शतमखदृषां त्वत्पदयुगम्।।2।।[1]

भावार्थ—हे अनन्त सुख के धारक तीर्थंकर भगवान इन्द्रों से पूजित आपके चरण कमलों पर चन्दन से लेप करता हूँ।

1. अभिषेक पाठ संग्रह, पृ. 249, पण्डित आशाधर कृत नित्यमहोद्योत।

अष्टद्रव्य से पूजा

भगवान की अष्टद्रव्य से पूजा करते समय चरणों में चंदन लगाना। फूल,फल, दीप, धूप वास्तविक लेना ऐसा विधान है प्रमाण देखिये—

पसमइ रयं असेसं, जिणपयकमलेसु, दिण्णजलधारा।
भिंगारणालणिग्गय, भवंतभिंगेहि कव्वुरिया।।
प्रशमति रजः अशेषं, जिनपदकमलेषु दत्तजलधारा।
भृंगारनालनिर्गता, भ्रमद्भृंगैः कर्बुरिता।।470।।[1]

अर्थ—सबसे पहले जल की धारा देकर भगवान की पूजा करनी चाहिए। वह जल की धारा भृंगार (झारी) की नाल से निकलनी चाहिए तथा वह जल इतना सुगंधित होना चाहिए कि उस पर भ्रमर आ जाएँ और जलधारा के चारों ओर घूमते हुये उन भ्रमरों से वह जल की धारा अनेक रंग की दिखाई देने लगे ऐसी जल की धारा भगवान के चरण कमलों पर पड़नी चाहिए। इस प्रकार जल की धारा से भगवान की पूजा करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं अथवा ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म शांत हो जाते हैं।

चंदणसुअन्धलेओ, जिणवर-चरणेसु जो कुणई भविओ।
लहइ तणू विक्किरियं, सहावसुयंधयं अमलं।।
चन्दनसुगंधलेपं, जिनवरचरणेषु यः करोति भव्यः।
लभते तनुं वैक्रियिकं, स्वभावसुगन्धकं अमलं।।471।।

अर्थ—जो भव्य पुरुष भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों पर (जिन प्रतिमा के चरण कमलों पर) सुगंधित चन्दन का लेप करता है उसको स्वर्ग में जाकर अत्यन्त निर्मल और स्वभाव से ही सुगंधित वैक्रियक शरीर प्राप्त होता है।

भावार्थ—चन्दन से पूजा करने वाला भव्य जीव स्वर्ग में जाकर उत्तम देव होता है।

पुण्णाण पुज्जेहि य, अक्खय-पुंजेहि देवपयपुरओ।
लब्भंति णवणिहाणे सुअक्खए चक्कवट्टित्तं।।
पुर्णैः पूजयेच्च अक्षत-पुंजैः देवपद - पुरतः।
लभ्यन्ते नवनिधानानि, सु अक्षयानि चक्रवर्तित्वं।।472।।

अर्थ—जो भव्य जीव भगवान जिनेन्द्र देव के सामने पूर्ण अक्षतों के पुंज

1. भावसंग्रह पृ. 102-103, श्लोक 471 से 477 तक।

चढ़ाता है अक्षतों से भगवान की पूजा करता है वह पुरुष चक्रवर्ती का पद पाकर अक्षयरूप नवनिधियों को प्राप्त करता है। चक्रवर्ती को जो निधियां प्राप्त होती हैं उनमें से चाहे जितना सामान निकाला जाये, निकलता ही जाता है, कम नहीं होता।

अलि-चुंबिएहिं पुज्जइ, जिणपयकमलं च जाइमल्लीहिं।
सो हवइ सुरवरिंदो, रमेई सुरतरुवरवणेहिं।।

अलि-चुम्बितैः पूजयति, जिनपद-कमलं च जातिमल्लिकैः।
स भवति सुरवरेन्द्रः, रमते सुरतरुवरवनेषु।।473।।

अर्थ—जो भव्य पुरुष भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की जिन पर भ्रमर घूम रहे हैं ऐसे चमेली, मोगरा आदि उत्तम पुष्पों से पूजा करता है वह स्वर्ग में जाकर अनेक देवों का इन्द्र होता है और वह वहाँ पर चिरकाल तक स्वर्ग में होने वाले कल्पवृक्षों के वनों में (बगीचों में) क्रीड़ा किया करता है।

दहिखीर-सप्पि-संभव-उत्तम-चरुएहिं पुज्जए जो हु।
जिणवरपाय - पओरुह, सो पावइ उत्तमे भोए।।

दधि-क्षीर-सर्पिः-सम्भवोत्तम-चरुकैः पूजयेत् यो हि।
जिनवर-पादपयोरुहं, स प्राप्नोति उत्तमान् भोगान्।।474।।

अर्थ—जो भव्य पुरुष दही, दूध, घी, आदि से बने हुये उत्तम नैवेद्य से भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की पूजा करता है उसे उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति होती है।

कप्पूर-तेल्ल-पयलिय-मंद-मरुपहयणडियदीवेहिं।
पुज्जइ जिण-पय-पोमं, ससि-सूरविसमतणुं लहई।।

कर्पूर-तेल-प्रज्वलित-मन्द-मरुत्प्रहतनटितदीपैः ।
पूजयति जिन-पद्मं, शशिसूर्यसमतनुं लभते।।475।।

अर्थ—जो दीपक, कपूर, घी, तेल आदि से प्रज्वलित हो रहा है और मन्द-मन्द वायु से नाच सा रहा है ऐसे दीपक से जो भव्य पुरुष भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की पूजा करता है वह पुरुष सूर्य-चन्द्रमा के समान तेजस्वी शरीर को धारण करता है।

सिल्लारस-अयरु-मीसिय-णिग्गय धूवेहिं वहल-धूमेहिं।
धूवइ जो जिणचरणेसु लहइ सुहवत्तणं तिज ए।।

सिलारसागुरुमिश्रितनिर्गतधूपैः बहलधूम्रैः।
धूपयेद्यः जिनचरणेसु लभते शुभवर्तनं त्रिजगति।।476।।

अर्थ—जिससे बहुत भारी धुंआं निकल रहा है और जो शिलारस (शिलाजीत) अगुरु, चंदन आदि सुगंधित द्रव्यों से बनी हुयी है ऐसी धूप अग्नि में खेकर भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों को धूपित करता है वह तीनों लोकों में उत्तम पद को प्राप्त होता है। धूप को अग्नि में खेना चाहिए और उससे निकला हुआ धूंआं दाएं हाथ से भगवान की ओर करना चाहिए।

पक्केहिं रसड्ढ-सुमुज्जलेहिं जिणचरणपुरओप्पविएहिं।
णाणाफलेहिं पावइ, पुरिसो हियइच्छयं सुफलं।।

पक्कैः रसाढ्यैः समुज्वलैः जिनवरचरणपुरतउपयुक्तैः।
नानाफलैः प्राप्नोति, पुरुषः हृदयेप्सितं सुफलं।।477।।

अर्थ—जो भव्य पुरुष अत्यन्त उज्ज्वल रस से भरपूर ऐसे अनेक प्रकार के पके फलों से भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों के सामने समर्पण कर पूजा करता है वह अपने हृदय अनुकूल उत्तम फलों को प्राप्त होता है।

उमास्वामी श्रावकाचार में श्री उमास्वामी आचार्य कहते हैं—

जिनेन्द्रप्रतिमां भव्यः, स्नापयेत्पंचकामृतैः।
तस्य नश्यति संतापः, शरीरादिसमुद्भवः।।161।।[1]

अर्थ—जो भव्य जीव जल, इक्षुरस, दूध, दही, घी, सर्वोषधि आदि से भगवान जिनेन्द्र देव की प्रतिमा का पंचामृताभिषेक करता हैं उसके शरीर से, मन से और अकस्मात् होने वाले सब तरह के संताप अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

श्रीमतां श्रीजिनेन्द्राणां, प्रतिमाग्रे च पुण्यदाः।
ददाति जलधारा यः, तिस्रो भृंगारनालतः।।162।।
जन्म-मृत्यु-जरा-दुःखं, क्रमात्तस्य क्षयं व्रजेत्।
स्वल्पैरेव भवैः पापरजः शाम्यति निश्चितम्।।163।।

अर्थ—जो भव्यजीव प्रातिहार्य आदि अनेक शोभाओं से सुशोभित भगवान जिनेन्द्र देव की प्रतिमा के सामने भृंगार नाल से (झारी से) तीन बार जल की धारा देता है व पुरुष महापुण्यवान समझा जाता है। और उसके जन्म, मरण, बुढ़ापा आदि के समस्त दुःख अनुक्रम से नष्ट हो जाते हैं तथा थोड़े ही भवों में उसकी पापरूपी धूलि अवश्य ही शांत हो जाती है।

भावार्थ—भगवान जिनेन्द्र देव की प्रतिमा के सामने झारी की टोंटी से तीन बार जल की धारा देनी चाहिए। यही जल पूजा कहलाती है। जलधारा झारी से

1. उमास्वामी श्रावकाचार, पृ .64-65, श्लोक 161 से 170 तक।

ही देनी चाहिए कटोरी आदि से नहीं।

चन्दनाद्यर्चनापुण्यात्, सुगंधि-तनुभाग् भवेत्।
सुगंधीकृतदिग्भागो, जायते च भवे भवे।।164।।

अर्थ—चन्दन से भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा करने से जो पुण्य होता है उससे यह जीव जन्म-जन्म में अत्यन्त सुगंधित शरीर प्राप्त करता है उस शरीर की सुगंधि से दशों दिशाएँ सुगंधित हो जाती हैं।

भावार्थ—भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों के अंगूठे पर अनामिका उंगली से चन्दन लगाना पूजा कहलाती है। सबसे छोटी उंगली के पास की उंगली को अनामिका कहते हैं।

अखण्डतन्दुलैः शुभ्रैः, सुगंधैः शुभशालिजैः।
पूजयन् जिनपादाब्जा-नक्षयां लभते रमाम्।।165।।

अर्थ—सफेद सुगंधित और शुभशालि धान्यों से उत्पन्न हुये अखंड तन्दुलों से भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की पूजा करने वाला मोक्षरूपी अक्षय लक्ष्मी को प्राप्त होता है।

भावार्थ—भगवान की प्रतिमा के सामने चावलों के पुञ्ज चढ़ाने से अक्षत पूजा कही जाती है। वे चावलों के पुञ्ज अंगूठे को ऊपर कर बंधी हुई मुट्ठी से रखने चाहिए, साथ में मंत्र भी पढ़ना चाहिए। रकेबी से अक्षत नहीं चढ़ाना चाहिए।

पुष्पैः संपूजयन् भव्योऽमरस्त्रीलोचनैः सदा।
पूज्यतेऽमरलोकेशदेवीनिकरमध्यगः ।।166।।

अर्थ—जो भव्य जीव पुष्पों से भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा करता है। वह स्वर्गलोक के इन्द्र की देवियों के मध्य में बैठा हुआ अनेक देवियों के सुंदर नेत्रों के द्वारा सदा पूजा जाता है।

भावार्थ—वह इन्द्र होता है और अनेक देवांगनाएं उसकी सेवा करती हैं। पुष्प भगवान की प्रतिमा के चरणों पर चढ़ाए जाते हैं। पुष्प दोनों हाथों की अंजलि से चढ़ाना चाहिए। इसी को पुष्प पूजा कहते हैं।

पक्वान्नादिकनैवेद्यैः प्रार्चयत्यनिशं जिनान्।
स भुनक्ति महासौख्यं पचेन्द्रियसमुद्भवम्।।167।।

अर्थ—जो भव्य जीव पकाये हुये अनेक प्रकार के नैवेद्य से भगवान जिनेन्द्र देव की प्रतिदिन पूजा करता है वह पांचो इन्द्रियों से उत्पन्न हुये महासुखों का अनुभव करता है।

भावार्थ—चावलों के भात को अन्न कहते हैं। किसी अच्छे थाल में नैवेद्य को रखकर तथा दोनों हाथों से उस थाल को पकड़कर भगवान के सामने आरती उतारने के समान उस थाल को फिराकर सामने रख देना चाहिए। हाथ या कटोरी से नैवेद्य नहीं चढ़ाना चाहिए।

सुरत्नसर्पिः-कर्पूरभवै - र्दीपैर्जिनेशिनाम्।
द्योतयेद्यः पुमानंघ्रीन् सः स्यात्कांतिकलानिधिः।।168।।

अर्थ—जो भव्य जीव रत्न, घी व कपूर के दीपकों से भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की आरती उतारता है उस पुरुष की कांति चन्द्रमा के समान निर्मल हो जाती है।

भावार्थ—दीप पूजा दीपक से ही होती है। रंगे हुए चटक से नहीं। रंगे हुए चटक से भगवान का शरीर दैदीप्यमान नहीं होता। दीपक से आरती उतारी जाती है। इसीलिए परिणामों की विशुद्धि जो आरती से होती है वह रंगे चटक से नहीं हो सकती। दोनों हाथों से दीपक का थाल लेकर दाईं ओर से बाईं ओर घुमाकर भगवान के सामने बार-बार दैदीप्यमान करने को आरती कहते हैं। इसी को दीप पूजा कहते हैं।

कृष्णागर्वादिजै-र्धूपै-र्धूपयेज्जिनपदयुगम्।
सः सर्वजनतानेत्रवल्लभः संप्रजायते।।169।।

अर्थ—जो भव्य जीव कृष्णगुरु, चन्दन आदि सुगंधित द्रव्यों से बनी हुई धूप से भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की पूजा करता है अग्नि में खेकर धूप चढ़ाता है। वह पुरुष समस्त लोगों के नेत्रों का प्यारा हो जाता है।

भावार्थ—धूप को अग्नि में खेकर उसका धूंआ अपने दांये हाथ से भगवान की ओर करना चाहिए इसी को धूप पूजा कहते हैं। धूप थाल में नहीं चढ़ाई जाती है किन्तु अग्नि में ही खेई जाती है।

आम्रनारिंगजंबीरकदल्यादि-तरुद्भवैः ।
फलैर्यजति सर्वज्ञं, लभतेऽपीहितं फलम्।।170।।

अर्थ—जो भव्य जीव आम, नारंगी, नींबू, केला, आदि वृक्षों से उत्पन्न होने वाले फलों से भगवान सर्वज्ञदेव की पूजा करता है वह पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार फलों को प्राप्त होता है।

भावार्थ—जिन फलों से इन्द्रिय और मन को संतोष हो ऐसे हरे व सूखे फल चढ़ाना चाहिए। फल देखने में सुन्दर और मनोहर होने चाहिए। गोला या बादाम

की मिंगी फल नहीं कहलाते किन्तु नैवेद्य कहलाते हैं। इसीलिए गोला के बदले नारियल चढ़ाना चाहिए, बादाम भी फोड़कर नहीं चढ़ाना चाहिए। रकेबी में फल रखकर बड़ी विनय और भक्ति से भगवान के सामने रखने चाहिए। आठों द्रव्यों में फल सर्वोत्कृष्ट द्रव्य है।

श्री रविषेणाचार्य कहते हैं[1] –

अथानन्तर भरत, पिता के समान, प्रजा पर राज्य करने लगा। उसका राज्य समस्त शत्रुओं से रहित तथा समस्त प्रजा को सुख देने वाला था।।136।। तेजस्वी भरत अपने मन में असहनीय शोकरूपी शल्य को धारण कर रहा था इसलिए ऐसे व्यवस्थित राज्य में भी उसे क्षणभर के लिए संतोष नही होता था।।137।। वह तीनों काल अरनाथ भगवान की वन्दना करता था भोगों से सदा उदास रहता था और समीचीन धर्म का श्रवण करने के लिए मंदिर जाता था। यही इसका नियम था।।138।। वहां स्व और पर शास्त्रों के पारगामी तथा अनेक मुनियों का संघ जिनकी निरन्तर सेवा करता था ऐसे द्युति नाम के आचार्य रहते थे।।139।। उनके आगे बुद्धिमान भरत ने प्रतिज्ञा की कि मैं राम के दर्शन मात्र से मुनिव्रत धारण करूँगा।। 140।। तदनन्तर अपनी गंभीर वाणी से मयूर समूह को नृत्य कराते हुये भगवान द्युति भट्टारक इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने वाले भरत से बोले।।141।। कि हे भव्य! कमल के समान नेत्रों के धारक राम जब तक आते तबतक तू गृहस्थ धर्म के द्वारा अभ्यास कर ले।।142।। महात्मा निर्ग्रन्थ मुनियों की चेष्टा अत्यन्त कठिन है पर जो अभ्यास के द्वारा परिपक्व होते हैं उन्हें उसका साधन करना सरल हो जाता है।।143।। ''मैं आगे तप करूंगा'' ऐसा कहने वाले अनेक जड़बुद्धि मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं पर तप नहीं कर पाते हैं।।144।। ''निर्ग्रन्थ मुनियों का तप अमूल्य रत्न के समान है''। ऐसा कहना भी अशक्य है फिर उसकी अन्य उपमा तो हो ही क्या सकती है?।।145।। गृहस्थों के धर्म को जिनेन्द्र भगवान ने मुनिधर्म का छोटा भाई कहा है सो बोधि को प्रदान करने वाले इस धर्म में भी प्रमादरहित होकर लीन रहना चाहिए।।146।। जैसे कोई मनुष्य रत्नद्वीप में गया वहां वह जिस किसी भी रत्न को उठाता है वही उसके लिए अमूल्यता को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार धर्मचक्र की प्रवृत्ति करने वाले जिनेन्द्र भगवान के शासन में जो कोई इस नियमरूपी द्वीप में आकर जिस किसी नियम को ग्रहण करता है वही उसके लिए अमूल्य हो जाता है।।147-148।। जो अत्यन्त श्रेष्ठ अहिंसारूपी रत्न को लेकर भक्तिपूर्वक

1. पद्मपुराण, पर्व 32, पृ. 95 से 99 तक।

जिनेन्द्रदेव की पूजा करता है वह स्वर्ग में परम वृद्धि को प्राप्त होता है।।149।। जो सत्यव्रत का धारी होकर मालाओं से भगवान की अर्चा करता है उसके वचनों को सब ग्रहण करते हैं तथा उज्ज्वल कीर्ति से वह समस्त संसार को व्याप्त करता है।।150।। जो अदत्तादान अर्थात् चोरी से दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता है वह रत्नों से परिपूर्ण निधियों का स्वामी होता है।।151।। जो जिनेन्द्र भगवान की सेवा करता हुआ परस्त्रियों में प्रेम नहीं करता है वह सबके नेत्रों को हरण करने वाला परम सौभाग्य को प्राप्त होता है।।152।। जो परिग्रह की सीमा नियत कर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान की अर्चा करता है वह अतिशय विस्तृत लाभों को प्राप्त होता है तथा लोग उसकी पूजा करते हैं।।153।। आहार-दान के पुण्य से यह जीव भोग से सहित होता है। अर्थात सब प्रकार के भोग इसे प्राप्त होते हैं यदि यह परदेश भी जाता है तो वहां भी उसे सदा सुख ही प्राप्त होता है।।154।। अभयदान के पुण्य से यह जीव निर्भय होता है और बहुत भारी संकट में पड़कर भी उसका शरीर उपद्रव से शून्य रहता है।।155।। ज्ञानदान से यह जीव विशाल सुखों का पात्र होता है और कलारूपी सागर से निकले हुये अमृत के कुल्ले करता है।।156।। जो मनुष्य रात्रि में आहार का त्याग करता है वह सब प्रकार के आरंभ में प्रवृत्त रहने पर भी सुखदायी गति को प्राप्त होता है।।157।। जो मनुष्य तीनों काल में जिनेन्द्रभगवान की वन्दना करता है उसके भाव सदा शुद्ध रहते हैं तथा उसका सब पाप नष्ट हो जाता है।।158।। जो पृथिवी तथा जल में उत्पन होने वाले सुगंधित फूलों से जिनेन्द्र भगवान की अर्चा करता है वह पुष्पक विमान को पाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है।।159।। जो अतिशय निर्मल भावरूपी फूलों से जिनेन्द्र देव की पूजा करता है वह लोगों के द्वारा पूजनीय तथा अत्यन्त सुन्दर होता है।।(160)।। जो बुद्धिमान चन्दन तथा कालागुरु आदि से उत्पन्न धूप जिनेन्द्र भगवान के लिए चढ़ाता है वह मनोज्ञ देव होता है।।(161)।। जो जिनमंदिर में शुभ भाव से दीपदान करता है वह स्वर्ग में देदीप्यमान शरीर का धारक होता है।।(162)।। जो मनुष्य छत्र, चमर, फन्नूस, पताका तथा दर्पण आदि के द्वारा जिनमंदिर को विभूषित करता है वह आश्चर्यकारक लक्ष्मी को प्राप्त होता है।।(163)।। जो मनुष्य सुगंधि से दिशाओं को व्याप्त करने वाली गंध से जिनेन्द्र भगवान का लेपन करता है वह सुगंधि से युक्त, स्त्रियों को आनन्द देने वाला प्रिय पुरुष होता है।।(164)।। जो मनुष्य सुगंधित जल से जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करता है वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहां

अभिषेक को प्राप्त होता है।।165।। जो दूध की धारा से जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करता है वह दूध के समान धवल विमान में उत्तम कान्ति का धारक होता है।।166।। जो दही के कलशों से जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करता है वह दही के समान फर्श वाले स्वर्ग में उत्तम देव होता है।।167।। जो घी से जिनदेव का अभिषेक करता है वह कांति, द्युति और प्रभाव से युक्त विमान का स्वामी देव होता है।।168।। पुराण में सुना जाता है कि अभिषेक के प्रभाव से अनन्तवीर्य अदि अनेक विद्वज्जन, स्वर्ग की भूमि में अभिषेक को प्राप्त हुये हैं।।169।। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिनमंदिर में रंगावलि आदि का उपहार चढ़ाता है वह उत्तम हृदय का धारक होकर परमविभूति और आरोग्य को प्राप्त होता है।।170।। जो जिनमंदिर में गीत, नृत्य तथा वादित्रों से महोत्सव करता है वह स्वर्ग में परम उत्सव को प्राप्त होता है।।171।। जो मनुष्य जिनमंदिर बनवाता है उस सुचेता के भोगोत्सव का वर्णन कौन कर सकता है?।।172।। जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर तथा असुरों के उत्तम सुख प्राप्त कर परमपद को प्राप्त होता है।।173।। तीनों कालों और तीनों लोकों में व्रत, ज्ञान, तप और दान के द्वारा मनुष्य के जो पुण्यकर्म संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमा के बनवाने से उत्पन्न हुये पुण्य की बराबरी नहीं कर सकते।।174-175।।

इस कहे हुये फल को जीव स्वर्ग में प्राप्त कर जब मनुष्य पर्याय में उत्पन्न होते हैं तब चक्रवर्ती आदि का पद पाकर वहां भी उसका उपभोग करते हैं।।176।। जो कोई मनुष्य इस विधि से धर्म का सेवन करता है वह संसार-सागर से पार होकर तीन लोक के शिखर पर विराजमान होता है।।177।। जो मनुष्य जिनप्रतिमा के दर्शन का चितंवन करता है वह बेला का, जो उद्यम का अभिलाषी होता है वह तेला का, जो जाने का आरंभ करता है वह चौला का, जो जाने लगता है वह पांच उपवास का, जो कुछ दूर पहुंच जाता है बारह उपवास का, जो बीच में पहुंच जाता है वह पन्द्रह उपवास का, जो मंदिर के दर्शन करता है वह मासोपवास का, जो मंदिर के आंगन में प्रवेश करता है वह छहमास के उपवास का, जो द्वार में प्रवेश करता है वह वर्षोपवास का, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्ष के उपवास का, जो जिनेन्द्र देव के मुख का दर्शन करता है वह हजार वर्ष के उपवास का और जो स्वभाव से स्तुति करता है वह अनन्त उपवास के फल को प्राप्त करता है। यथार्थ में जिनभक्ति से बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है ।।178-182।। आचार्य द्युति कहते हैं कि हे भरत! जिनेन्द्र देव की भक्ति से कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण हो

जाते हैं वह अनुमप सुख से सम्पन्न परमपद को प्राप्त होता है।।183।। ऐसा कहने पर अत्यन्त समीचीन भक्ति से युक्त भरत ने गुरु के चरणों को नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म ग्रहण किया।।184।।[1]

श्रीरामचन्द्र और सती सीता ने मुनिराज के चरणों में चंदन लेपन किया एवं पुष्पों से पूजा की–

अथोद्वर्त्य चिरं पादौ, तयोर्निर्झरवारिणा।
गन्धेन सीतया लिप्तो, चारुणां पुरुभावया।।44।।
आसन्नानां च वल्लीनां, कुसुमैर्वनसौरभैः।
लक्ष्मीधरार्पितैः शुक्लैः, पूरितान्तरमर्चितौ।।45।।
ततस्ते करयुग्माब्ज-मुकुलभ्राजितालिकाः।
चक्रुर्योगीश्वरीं भक्त्या, वन्दनां विधिकोविदाः।।46।।

अथानन्तर भक्ति से भरी सीता ने निर्झर के जल से देर तक उन मुनियों के पैर धोकर मनोहर गन्ध से लिप्त किये।।44।। तथा जो वन को सुगंधित कर रहे थे एवं लक्ष्मण ने जो तोड़ कर दिये थे, ऐसे निकटवर्ती लताओं के फूलों से उनकी खूब पूजा की।।45।। तदनन्तर अंजलिरूपी कमल की बोड़ियों से जिनके ललाट शोभायमान थे तथा जो विधि-विधान के जानने में निपुण थे ऐसे उन सबने भक्तिपूर्वक मुनिराज की वन्दना की।।46।।

स्थापयित्वा घनामोद-समाकृष्टमधुव्रतैः।
धूपैरालेपनैः पुष्पै-र्मनोज्ञैर्बहुभक्तिभिः।।89।।
विधाय महतीं पूजां, सन्निविष्टः पुरोऽवनौ।
सगर्भं वदनं चक्रे पूतैः स्तुत्यक्षरैश्चिरम्।।90।।[2]

प्रतिमा स्थापित कर उसने भारी सुगंधि से भ्रमरों को आकर्षित करने वाले धूप, चन्दन, पुष्प तथा मनोहर नैवेद्य के द्वारा बड़ी पूजा की और सामने बैठकर चिरकाल तक स्तुति कर पवित्र अक्षरों से अपने मुख को सहित किया।।89-90।।

सचित्त पूजा निर्दोष है–

यथा विषकणः प्राप्तः सरसीं नैव दुष्यति।
जिनधर्मोद्यतस्यैवं, हिंसालेशो वृथोद्भवः।।92।।
प्रासादादि ततः कार्यं, जिनानां भक्तितत्परैः।
माल्याधूपप्रदीपादि, सर्वं च कुशलैर्जनैः।।93।।[3]

1. पद्मपुराण, भाग-2, पर्व 39, पृ. 181। 2. पद्मपुराण पर्व-10, पृष्ठ 230, रावण ने पूजा की। 3. पद्मपुराण, पर्व -14, पृ. 312-313।

जिस प्रकार विष का एक कण तालाब में पहुंचकर पूरे तालाब को दूषित नहीं कर सकता उसी प्रकार जिनधर्मानुकुल आचरण करने वाले फुरुष से जो थोड़ी हिंसा होती है वह उसे दूषित नहीं कर सकती। उसकी वह अल्प हिंसा व्यर्थ रहती है।।92।। इसलिए भक्ति में तत्पर रहने वाले कुशल मनुष्यों को जिनमंदिर आदि बनवाना चाहिए और माला, धूप, दीप आदि सबकी व्यवस्था करनी चाहिए।।93।।

सफेद ध्वजा जिनमंदिर पर—

सितकेतुकृतच्छायाः, सहस्राकारतोरणाः।
शृंङ्गेषु पर्वतस्यामी, विराजन्ते जिनालयाः।।276।।
कारिता हरिषेणेन, सज्जनेन महात्मना।
एतान् वत्स नमस्य, त्वं भव पूतमनाः क्षणात्।।277।।[1]

किन्तु सफेद पताकाएं जिन पर छाया कर रही हैं तथा जिनमें हजारों प्रकार के तोरण बने हुये हैं ऐसे ये जिनमंदिर पर्वत के शिखरों पर सुशोभित हो रहे हैं।।276।। ये सब मंदिर महापुरुष हरिषेण चक्रवर्ती के द्वारा बनवाये हुये हैं। हे वत्स! तू इन्हें नमस्कार कर और क्षणभर में अपने हृदय को पवित्र कर।।277।।

अंजना ने भगवान की पूजा की—

तस्मात्साधुमिमं देवं समाश्रित्य कृतोचितम्।
मुनिपर्यंङ्कपूतायां गुहायामत्र संक्षयात्।।289।।
मुनिसुव्रतनाथस्य विन्यस्य प्रतियातनाम्।
अर्चयन्त्यौ सुखप्राप्त्यै स्वामोदैः कुसुमैरलम्।।290।।
सुखप्रसूतिमेतस्य, गर्भस्याध्यायचेतसि।
विस्मृत्य वैरहं दुःखं, समयं किंचिदास्वहे।।291।।[2]

इसलिए इस उत्तम देव का यथोचित आश्रय लेकर मुनिराज की पद्मासन से पवित्र इस गुफा में श्री मुनिसुव्रत भगवान की प्रतिमा विराजमान कर सुख-प्राप्ति के लिए अत्यंत सुगंधित फूलों से उसकी पूजा करती हुई हम दोनों कुछ समय तक यहीं रहें। इस गर्भ की सुख से प्रसूति हो जाये चित्त में इसी बात का ध्यान रखें और विरह-संबंधी सब दुख भूल जावें।।289-291।।

सचित्त पूजा—

माल्यगंधप्रधूपाद्यैः, सचित्तैः कोऽर्चयेज्जिनम्।
सावद्यसंभवं वक्ति यः, स एवं प्रबोध्यते।।140।।

1. पद्मपुराण, भाग-1, पर्व-8, पृ. 188। 2. पद्मपुराण, भाग-1, पर्व-17, पृष्ठ 391।

जिनार्चनिकजन्मोत्थं, किल्विषं हंति यत्कृतम्।
सा किंचिद् यजनाचारभवं सावद्यमंगिनाम्।।141।।[1]

अर्थ—कोई कोई लोग यह कहते हैं कि पुष्पमाला, धूप, दीप, जल, फल आदि सचित्त पदार्थों से भगवान की पूजा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि सचित्त पदार्थों से पूजा करने में सावद्य जन्य पाप (सचित्त के आरंभ से उत्पन्न हुआ पाप) उत्पन्न होता है। उनके लिए आचार्य समझाते हैं कि भगवान की पूजा करने से अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं फिर क्या उसी पूजा से उसी पूजा में होने वाला आंरभ जनित वा सचित्त जन्य थोड़ा सा पाप नष्ट नहीं होगा ? अवश्य होगा। इसका भी कारण यह है कि—

प्रेर्यन्ते यत्र वातेन, दन्तिनः पर्वतोपमाः।
तत्राल्पशक्तितेजस्सु, का कथा मशकादिषु।।142।।
भक्तं स्यात्प्राणनाशाय, विषं केवलमंगिनाम्।
जीवनाय मरीचादि-सदौषधिविमिश्रतम्।।143।।

अर्थ—जिस वायु से पर्वत के समान बड़े-बड़े हाथी उड़ जाते हैं उस वायु के सामने अत्यन्त अल्प शक्ति को धारण करने वाले डांस मच्छर क्या टिक सकते हैं ? कभी नहीं। उसी प्रकार जिस पूजा से जन्म-जन्मान्तर के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं उसी पूजा से क्या उसी पूजा के विधि-विधान में होने वाली बहुत ही थोड़ी हिंसा नष्ट नहीं हो सकती ? अवश्य होती है। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। विष भक्षण करने से प्राणियों के प्राण नष्ट हो जाते हैं परन्तु वही विष यदि सोंठ, मिरच, पीपल आदि औषधियों के साथ मिलाकर दिया जाये तो उसी से अनेक रोग नष्ट होकर जीवन अवस्था प्राप्त होती है। इसी प्रकार सावद्य कर्म यदि विषय सेवन के लिए किये जांये तो वे पाप के कारण हैं ही परन्तु भगवान की पूजा के लिए बहुत ही थोड़े सावद्य कर्म पाप के कारण नहीं होते, पुण्य के ही कारण होते हैं। मंदिर बनवाना, पूजा करना, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करना, रथोत्सव करना आदि जितने पुण्य के कारण हैं उन सबमें थोड़ा बहुत सावद्य अवश्य होता है। परन्तु वह सावद्य दोष पुण्य का ही कारण होता है। इसी प्रकार सचित्त द्रव्य से होने वाली पूजा में होने वाला सावद्य दोष पुण्य का ही कारण होता है। भगवान की पूजा केवल पुण्य उपार्जन करने के लिए, आत्मा का कल्याण करने के लिए और परम्परा से मोक्ष प्राप्त करने के लिए की जाती है,

1. उमास्वामी श्रावकाचार, श्लोक 140 से 143 तक, पृ. 55 से 57 तक।

विषयों के सेवन करने के लिए नहीं की जाती, इसीलिए उससे होने वाला सावद्य कर्म पाप का कारण कभी नहीं हो सकता पुण्य का ही कारण होता है।

तथा कुटुंबभोगार्थ-मारम्भः पापकृद्भवेत्।
धर्मकृद्दानपूजादौ हिंसालेशो मतः सदा।।144।।

अर्थ—कुटुंब पोषण और भोगोपभोग के लिए किया गया आरंभ पाप उत्पन्न करने वाला होता है। परन्तु दान, पूजा आदि धर्मकार्यों में किया गया आरम्भ या की गयी लेशमात्र हिंसा सदा पुण्य को बढ़ाने वाली ही मानी गई है।

गंधोदकं च शुद्ध्यर्थं, शेषां संततिवृद्धये।
तिलकार्थं च सौगंध्यं, गृह्णन् स्यान्नहि दोषभाक्।।145।।

अर्थ—अपने शरीर को शुद्ध करने के लिए भगवान का गंधोदक ले लेना चाहिए। संतति की वृद्धि के लिए शेषाक्षत ले लेना चाहिए और तिलक लगाने के लिए चन्दन ले लेना चाहिए। इन द्रव्यों के ले लेने में कोई किसी प्रकार का दोष नहीं लगता।

भावार्थ—अभिषेक का गंधोदक यद्यपि मंत्र पूर्वक चढ़ाया जाता है तथापि उसके लेने में कोई दोष नही हैं। पूजा करने के बाद बचे हुये अक्षतों को शेषाक्षत कहते हैं। पूजा करने के बाद शेषाक्षतों को मस्तक पर धारण करना चाहिए। इसी प्रकार चंदन से पूजा करने के बाद बचे हुये चंदन से तिलक लगाने में कोई दोष नहीं है प्रत्युत गुण ही है।

''पुष्पस्रग्मंजरी वः फलमलघुजिनेन्द्रांघ्रिदिव्याङ्घ्रिपस्था।।26।।[1]

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों पर स्थित चढ़ाए गये पुष्प तुम्हें महान फलदायक होवे।

1. अभिषेक पाठ संग्रह, पृ. 10, आचार्य पूज्यपाद कृत जैनाभिषेक

स्त्रियों के द्वारा जिनाभिषेक के प्रमाण

(1)

अत्यंतसुकुमारस्य, जिनस्य सुरयोषितः।
शच्याद्याः पल्लवस्पर्श-सुकुमारकरास्ततः।।172।।
दिव्यामोदसमाकृष्टषट्पदौघानुलेपनैः ।
उद्वर्तयन्त्यस्ताः प्रापुः, शिशुस्पर्शसुखं नवम्।।173।।
ततो गंधोदकैः कुंभैरभिषिंचन् जगत्प्रभुं।
पयोधरभरानम्रास्ता वर्षा इव भूभृतं[1]**।।174।।**

शचि आदि देवियों ने अत्यंत सुकुमार जिनबालक के शरीर पर दिव्य सुगंधित चंदन विलेपन करके शिशु के स्पर्श के नूतन सुख का अनुभव किया। पुनः सुगंधित जल से भरे हुये कलशों से जगत के प्रभु का अभिषेक किया।

(2)

ततः सुरपति स्त्रियो जिनमुपेत्य शच्यादयः।
सुगंधितनुपूर्वकैर्मृदुकराः समुद्वर्तनम्।।
प्रचक्रुरभिषेचनं शुभपयोभिरुच्चैर्घटैः।
पयोधरभरैर्निजैरिव समं समावर्जितैः[2]**।।54।।**

शची आदि इन्द्राणियों ने जिनेन्द्र देव के कोमल शरीर का उद्वर्तन करके शुभ जल से परिपूर्ण कलशों से उनका अभिषेक किया।

(3)

गृहीतगंध-पुष्पादि-प्रार्चनाः सपरिच्छदा।
अथैकदा जगामैषा, प्रातरेव जिनालयम्।।55।।
त्रिःपरीत्य ततः स्तुत्वा, जिनांश्च चतुराशया।
संस्नाप्य पूजयित्वा च, प्रयाता यति संसदि[3]**।।56।।**

वह कन्या सपरिवार गंध, पुष्प आदि पूजन सामग्री लेकर प्रातः ही जिनमंदिर में पहुंची। वहां पर तीन प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करके और उनकी पूजा करके यतियों की सभा में पहुंचती है।

1. हरिवंशपुराण सर्ग 8, पृ. 159। 2. हरिवंशपुराण सर्ग 38, पृ. 485। 3. जिनदत्तचरित्र-गुणभद्राचार्य कृत।

(4)

अथैकदा सुता सा च सुधीः मदनसुंदरी।
कृत्वा पंचामृतैः स्नानं, जिनानां सुखकोटिदम्।।

एक समय विदुषीमदन सुंदरी ने करोड़ों सुखों को देने वाला ऐसा जिनेन्द्रदेव का पंचामृतों से अभिषेक किया।

(5)

तदा वृषभसेना च प्राप्य राज्ञीपदं महत्।
दिव्यान् भोगान् प्रभुंजाना, पूर्वपुण्यप्रसादतः।।38।।
पूजयंती जगत्पूज्यान्, जिनान् स्वर्गापवर्गदान्।
दिव्यैरष्टमहाद्रव्यैः, स्नपनादिभिरुज्ज्वलैः[2]।।39।।

तब वृषभसेना सम्राज्ञीपद को प्राप्त कर पूर्व पुण्य से दिव्य भोगों को भोगती हुयी जगत्पूज्य जिनप्रतिमाओं की अभिषेकपूर्वक पूजा करती थी।

(6)

इत्युक्तो नोदयद्वेगात्, सारथी रथमाप सः।
जिनवेश्म तमास्थाप्य, तौ प्रविष्टौ प्रदक्षिणम्।।20।।
क्षीरेक्षुरसधारौघै-र्घृतदध्युकदकादिभिः ।
अभिषिच्य जिनेंद्रार्चा-मर्चितां नृसुरासुरैः[3]।।21।।

गंधर्वसेना के ऐसा कहने पर सारथी ने रथ को वेग से बढ़ाया और सब जिनमंदिर जा पहुंचे। वहां रथ को खड़ा कर वसुदेव और गंधर्वसेना ने मंदिर में प्रवेश किया, तीन प्रदक्षिणाएं दीं और पुनः दूध, इक्षुरस की धारा, घी, दही तथा जल आदि से मनुष्यों और सुर-असुरों से पूज्य ऐसे जिनेन्द्र देव की प्रतिमा का अभिषेक किया।

(7)

अभिषेकैर्जिनेंद्राणा-मत्युदारैश्च पूजनैः
दानैरिच्छाभिपूरैश्च, क्रियतामशुभेरणम्।।16।।
एवमुक्ता जगौ सीता-देव्यः साधु समीरितम्
दानं पूजाभिषेकश्च, तपश्चाशुभसूदनम्[4]।।17।।

जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक, अत्युदार पूजन और किमिच्छक दान के द्वारा

1. श्रीपालचरित् बृहन्नेमिचन्द्रकृत पृ. 6। 2. आराधना कथा कोष, भाग-3, पृ. 421। 3. हरिवंशपुराण सर्ग 22, पृ. 320। 4. पद्मपुराण, भाग-3, पर्व 96, पृ. 197।

अशुभ कर्म को दूर हटाना चाहिए।

इस प्रकार कहने पर सीता ने कहा कि हे देवियों! आप लोगों ने ठीक कहा है क्योंकि दान, पूजा, अभिषेक और तप अशुभ कर्मों को नष्ट करने वाला है।

(8)

तस्मिन् विधाय महतीमुपवासपूर्वां,
पूजां जगद्विजयिनो जिनपुंगवस्य।।
स्नानं समीहितनिमित्तमथस्तदीय-
बिम्बस्य स प्रविदधे सहितोऽग्रदेव्या[1]।।61।।

जगत विजयी जिनेन्द्र देव की पूजा करके राजा ने अपनी पट्टरानी के साथ जिनेन्द्र देव की प्रतिमा का अभिषेक किया।

(9)

श्री वीरनाथ-बिंबस्य, स्नपनं क्रियते मुदा
इक्षुसुघृतसद्दुग्ध-दधिवारिभृतैर्घटैः ।।16।।
ततः पूजा प्रकर्तव्या, वीरस्य सलिलादिभिः
हृद्वाक्कायं स्थिरीकृत्य, दुष्कृतनाशनहेतवे।।17।।[2]

किसी महिला को उपदेश देते हैं कि तुम्हें वीरप्रभु की प्रतिमा का अभिषेक दूध, दही, घी, इक्षुरस, पूर्ण कलश आदि के करने चाहिए तत्पश्चात् मन-वचन-काय को स्थिर करके पाप को नष्ट करने हेतु महावीर प्रभु की जलादि से पूजा करनी चाहिए।

(10)

इतीयं निश्चयं कृत्वा, दिनानां सप्तकं सती
श्री जिनप्रतिबिंबानां, स्नपनं सा तदाऽकरोत्।
चन्दनागुरुकर्पूर-सुगंधैश्च विलेपनैः
सा राज्ञी विदधे प्रीत्या, जिनेन्द्राणां त्रिसंध्यकम्।।[3]

इस प्रकार से निश्चय करके उस रानी ने सात दिन तक तीनों कालों में चंदन आदि सुगंधित विलेपन पूर्वक श्री जिनदेव की प्रतिमाओं का अभिषेक किया।

(11)

ततस्तयोर्जिनेन्द्राणां, महास्नपनपूर्वकम्,
कल्याणदायिनीं पूजां, पात्रदानं सुखप्रदम्।।

1. चंद्रप्रभचरित सर्ग 3। 2. गौतमचरित्र सर्ग 3 श्रीधर्मचंद्र मंडलाचार्यकृत। 3. षट्कर्मोपदेशरत्नमाला, आचार्य सकलभूषण कृत

कुर्वतोः सुखतः कैश्चिद् मासैर्जनिः सुतोत्तमः।[1]
तदानन्दः स्ववन्धूना-मभूत्प्राप्ते निधौ यथा।।19।।

जिनेन्द्र भगवान की महाअभिषेक पूर्वक कल्याणदायिनी पूजा को और सुखप्रद दान को करते हुये उन दोनों के कुछ महीने बाद पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई।

(12)

शुक्लश्रावणमासस्य सप्तमीदिवसेऽर्हताम्।
स्नपनं पूजनं कृत्वा, भक्त्याष्टविधमूर्जितम्।।[2]

श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन अर्हंत भगवान का अभिषेक और अष्टविध पूजन करके–

(13)

मुनिसुव्रतनाथस्य, विन्यस्य प्रतियातनां।
अर्चयन्त्यौ सुखप्राप्त्यै, स्वामोदैः कुसुमैरलं[3]।।290।।

अंजना और बसंतमाला वन की उस गुफा में मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा विराजमान करके सुख की प्राप्ति के लिए उसकी पूजा-अर्चना करती थीं।

(14)

कन्या वोली किहविध करें, किस दिन से यह व्रत हम करें।
तब गुरु बोले वचन रसाल, भादव मास कह्यो सुखमाल।।
शुक्ल पंचमी दिन सों लेय, पंचामृत अभिषेक करेय।
पूजार्चन कीजे शुभ सही, जिन चौबीस तनी सुखमही।।[4]

(15)

ऐसे वचन सुने मुनि जबे, तब बोले पुत्री सुन अबे।
भादों शुक्ल पक्ष जब होय, दशमी दिन आराधो सोय।।
पंचामृत की धारा देव, मन में राखो श्री जिनदेव।
शीतलजिन की पूजा करो, मिथ्या मोह दूर परिहरो।।[5]

(16)

इन्द्राणीप्रमुखादेव्यः, सद्गंधैरनुलेपनैः।
चक्रुरुद्वर्तनं भक्त्या, करैः पल्लवकोमलैः।।186।।
महीध्रमिव तं नाथं, कुम्भैर्जलधरैरिव।
अभिषिच्य समारब्धाः कर्तुमस्य विभूषणम्।।187।।[6]

1. आ.क.कोश, पृ 402, (कथा रात्रिभोजन त्याग की)। 2. बृहत्कथाकोश। 3. पद्मपुराण, पर्व-16, पृ. 391। 4. जिनवाणी, दशलक्षण व्रतकथा। 5. सुगंधदशमी व्रतकथा।6. पद्मपुराण पर्व3, पृ. 44।

इंद्राणी आदि देवियों ने सुगंधित गंध का अवलेपन करके पर्वत के सदृश महान ऐसे वृषभदेव का कलशों से अभिषेक किया।

(17)

''यावज्ज्येष्ठा जिनप्रतिमां गृहीत्वा गच्छति तावत्तत्र न कोऽपि दृष्टः। ज्येष्ठा तु लज्जिता।[1]''

जब तक ज्येष्ठा जिनप्रतिमा को लेकर वहां पहुंची, वहां पर उसे कोई नहीं दिखा अतः वह लज्जित हो गयी।

(18)

गंधैः सुगंधिभिः सांद्रै-रिन्द्राणी गात्रमीशितुः[2]

इंद्राणी ने सुगंधित गंध से भगवान के शरीर पर लेप लगाया।

(19)

कंकण बंधन के बाद विघ्न शांति के लिए दूसरी बार फिर वर या कन्या को गाजे बाजे सहित श्रीजिनमंदिर में जाकर भगवान की अभिषेक तथा पूजन करनी चाहिए।[3]

(20)

कन्या का पिता विवाह दिन से एक माह पहले किसी शुभ समय प्रातः काल श्री भगवान का कन्या सहित अभिषेक पुरस्सर नित्यनियम पूजन करके निम्नलिखित श्री सिद्धयंत्र की पूजा करे।[4]

(21)

तत्प्रतीष्ठाभिषेकांते, महापूजाः प्रकुर्वती।
महुःस्तुतिभिरर्थ्याभिः, स्तुवती भक्तितोऽर्हतः।।174।।[5]

सुलोचना ने प्रतिष्ठा तथा अभिषेक के बाद महापूजा को करके महान स्तुतियों के द्वारा भक्ति से अर्हंत का स्तवन किया।

प्रतिमां च प्रविश्येनां पूर्व देशे व्यतिष्ठपत्।
आनर्च च विचित्राभिः सुमनोभि; सुगंधिभिः।।193।।[6]

भावार्थ–(अंजना के पूर्व भव में) उस लक्ष्मीमती नाम की रानी ने संयम-श्री नामा आर्यिका के उपदेशानुसार जलाशय में से उस जिनेन्द्र की प्रतिमा को निकालकर विराजमान किया और सुगंधित पुष्पों से पूजा की।

1. षट्पाहुड़ संस्कृत टीका, पृ. 334। 2. आदिपुराण जिनजन्मोत्सव, पर्व 14, पृ. 304। 3. जैनविवाहविधि, पृ. 6 पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ जयपुरकृत। 4. वृहत् जैन विवाह विधि पृ. 7, पं. कुंज बिहारीलाल जी शास्त्री द्वारा लिखित। 5. आदिपुराण पर्व 43, पृ. 368। 6. रविषेणाचार्य कृत पद्मपुराण, पर्व 17।

यज्ञोपवीत आवश्यक है

भगवान के अभिषेक, पूजा व साधु के आहार दान में यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक है

खान में से निकला हुआ सोना तब तक रूप रंग में सुन्दर नहीं बन पाता, जब तक कि उसका विधिपूर्वक अग्नि से तपाकर संस्कार नहीं हो जाता। अग्नि के अनेक तापों से तपकर ही सुवर्ण मूल्यवान बना करता है। धूल पत्थर में मिले हुए हीरे का कुछ विशेष मूल्य नहीं होता, जब उसे शिल्पी अच्छी तरह काटकर, शाण पर चढ़ाकर उसको ठीक तरह घिसकर उसकी चमक प्रगट करता है, तब वह खान का तुच्छ पाषाण बहुमूल्य हीरा बन जाता है।

पत्थर की खान से निकले हुए पत्थर का मूल्य कोई विशेष नहीं होता। जब उस पाषाण को मूर्तिकार शिल्पी अपने सधे हुए हाथों से गढ़कर सुन्दर मूर्ति बना देता है, तब वह पाषाण बहुमूल्य बन जाता है। यदि उस पाषाण से अर्हन्त भगवान की मूर्ति बनाई गई हो, तब तो उस पाषाण का मूल्य तथा सम्मान और अधिक हो जाता है।

परन्तु वह अर्हन्त भगवान की प्रतिमा तब तक अपूज्य साधारण मूर्ति ही बनी रहती है, जब तक कि उसका मंत्र, पूजा प्रतिष्ठा आदि विधान द्वारा संस्कार नहीं किया जाता। संस्कार हो जाने पर वह प्रतिमा अर्हन्त भगवान के समान पूज्य बन जाती है।

इसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी तब तक मूल्यवान नहीं बन पाता, जब तक कि उसे विविध संस्कारों द्वारा संस्कृत न किया जावे। मानवीय जीवन को सुसंस्कृत बनाने के लिए 16 संस्कार आचार्यों ने बतलाये हैं। उनमें से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णों के लिए यज्ञोपवीत संस्कार बहुत महत्वपूर्ण है।

माता के गर्भ से प्रगट होना मनुष्य का पहला जन्म है और सद्गुणों में प्रविष्ट होने के लिए यज्ञोपवीत (जनेऊ) संस्कार होना मनुष्य का दूसरा गुणमय जन्म माना गया है। इन दो जन्मों के कारण ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को 'द्विज' (दो जन्म वाले) कहा जाता है।

द्विजातो हि द्विजन्मेष्टः क्रियातो गर्भतश्च यः।
क्रिया-मंत्र-विहीनस्तु केवलं नाम-धारकः।।

संस्कार के बिना मनुष्य पूज्य नहीं हो सकता। इसलिए तीन वर्ण वालों को जनेऊ संस्कार अवश्य कराना चाहिए।

मुक्ति प्राप्त करने के लिए मनुष्य भव प्राप्त करना आवश्यक है, क्योंकि देव, पशु, नारकी जीव संयम धारण नहीं कर सकते। परन्तु मनुष्यों में जो मनुष्य अपनी कुल परम्परा से हीन-आचरणी हैं, जिनके नीच गोत्र का उदय होता है, वे मुनि-दीक्षा लेकर संयम धारण नहीं कर सकते। अतः मनुष्य भव की तरह मुक्ति प्राप्त करने के लिए वज्रऋषभनाराच संहनन तथा उच्च गोत्र कर्म का उदय भी होना एवं हीनांग न होना भी आवश्यक होता है।

उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार उच्च कुलीन पुरुषों के ही होता है, ऐसा ही आर्ष वाक्य है–

जातिगोत्रादि कर्माणि शुक्लध्यानस्य हेतवः।
येषां स्युस्ते त्रयो वर्णाः शेषाः शूद्राः प्रकीर्तिताः।।

अर्थ–उच्च गोत्र, सज्जाति आदि कर्म शुक्ल ध्यान के कारण हैं। ये उच्च गोत्र, सज्जाति आदि कर्म जिनके होते हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीन वर्ण हैं, इनके सिवाय सब शूद्र कहे गये हैं।

यज्ञोपवीत संस्कार के समय बालक को ब्रह्मचर्य व्रत दिया जाता है, जिससे उसका आत्मतेज प्रदीप्त होता है। विद्या अध्ययन के लिए, शारीरिक बल बढ़ाने के लिए तथा मंत्र-साधन आदि ऋद्धि-सिद्धि के लिए भी ब्रह्मचर्य परम आवश्यक है। इसके सिवाय जीवन को सच्चरित्र बनाने के लिए अन्य व्रत भी यज्ञोपवीत संस्कार के समय दिये जाते हैं।

यज्ञोपवीत संस्कार विधि 'षोडशसंस्कार' या 'श्रावक संस्कार निर्देशिका' पुस्तक से कराना चाहिए।

बालकों को यथा-नियत काल तक ब्रह्मचर्य धारण करने वालों को एक तथा गृहस्थों को दो यज्ञोपवीत धारण करना योग्य है।

यदि यज्ञोपवीत गिर जाये अथवा टूट जाये, तो अन्य एक दूसरा नवीन यज्ञोपवीत पहनना चाहिए। जनेऊ पहनते समय ''ॐ नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकृतार्हं रत्नत्रयस्वरूपयज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा'' यह मंत्र पढ़ना है।

यज्ञोपवीत धारण करके ही भगवान के अभिषेक व पूजा का विधान है। यथा श्री पूज्यपादस्वामीकृत अभिषेक पाठ से–

ब्रह्मस्थानमिदं दिशावलयमप्येतन्पवित्रांकुशै-
रर्हद्ब्रह्ममहामहाध्वरविधिप्रत्यूहविध्वंसिभिः।
जैनब्रह्मजनैकभूषणमिदं यज्ञोपवीतं मया
विश्राणेन महेन्द्रविभ्रमकरं संघार्यते मण्डनम्।।5।।

श्री गुणभद्राचार्य कृत अभिषेक पाठ से–

ॐ मतिनिर्मलमुक्ताफलललितं यज्ञोपवीतमतिपूतम्।
रत्नत्रयमिति मत्वा करोमि कलुषापहरणमाभरणम्।।15।।

श्री अभयनंदि आचार्यकृत अभिषेक पाठ से–

पूर्वं पवित्रतरसूत्रविनिर्मितं यत्
प्रीतः प्रजापतिरकल्पयदङ्गसङ्गि।
सद्भूषणं जिनमहे निजकन्धरायां
यज्ञोपवीतमहमेष तदातनोमि।।4।।

श्री गजांकुशकविकृत अभिषेक पाठ से–

श्रीमन्मंदरसुन्दरे शुचिजलैर्धौते सदर्भाक्षते,
पीठे मुक्तिवरं निधाय रचितं तत्पादपुष्पस्रजा।
इंद्रोऽहं निजभूषणार्थममलं यज्ञोपवीतं दधे,
मुद्राकंकणशेखरानपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे।।1।।

अन्य अभिषेक पाठ–

अतिनिर्मलमुक्ताफलललितं यज्ञोपवीतमतिपूतम्।
रत्नत्रयमिति मत्वा करोमि कलुषापहरणमाभरणम्।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय नमः स्वाहा।

यज्ञोपवीत धारण करने वालों का आचार

(1) जिनेन्द्र देव के दर्शन प्रतिदिन करना।
(2) देव, शास्त्र और गुरु की भक्ति करना।
(3) छना हुआ जल पीना।
(4) रात्रि में अन्न का भोजन न करना।
(5) उदंबर फल (बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, अंजीर) नहीं खाना।
(6) मांस, मदिरा (शराब), मधु (शहद) नहीं खाना।
(7) सप्त दुर्व्यसनों का त्याग करना।

शिक्षा

(1) पेशाब-टट्टी आदि अशौच कर्म के समय जनेऊ को उच्च स्थान (कर्ण) में लगाना। भूल जाने पर नौ बार णमोकार मंत्र जपने से शुद्धि होती है।

(2) जनेऊ टूट जाने पर, सूतक और पातक आदि होने पर अशुद्ध हो जाता है। इसलिए नवीन जनेऊ पहनना और पुरानी जनेऊ को नदी आदि में डाल देना चाहिए।

(3) बिना जनेऊ के मनुष्य को श्री जिनेन्द्रदेव की पूजा और पात्र दान करने का अधिकार नहीं है।

(4) जनेऊ पहनकर, महाव्रत धारण करने से पहले जनेऊ उतार देने से प्रतिज्ञा भंग का दोष लगता है।

णमोकार मंत्र एवं चत्तारि मंगल

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।1।।

चत्तारि मंगलं-अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

शासन देव-देवी आदि के प्रमाण

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया, देवता शांतिहेतवे।
क्रूरास्तु देवताः हेया, येषां स्याद्वृत्तिरामिषैः।।[1]

अर्थ–जिनागम में विश्वेश्वर, चक्रेश्वरी, पद्मावती आदि देवता शांति के लिए बतलाये हैं। परन्तु जिन पर बलि चढ़ाई जाती है, जीव मारकर चढ़ाये जाते हैं ऐस चंडी, मुंडी आदि देवता त्याग करने योग्य हैं। इसका भी खुलासा इस प्रकार है।

मिथ्यात्वपूरिताः क्रूराः, सशस्त्राः सपरिग्रहाः।
निंद्या आमिषवृत्तित्वान्मद्यपानाच्च हीनकाः।।1।।

कुदेवाश्च ता ज्ञेया ब्रह्मोमाविष्णुकादयः।
प्रतिपत्तिश्च तासां हि, मिथ्यात्वस्य च कारणम्।।2।।

तस्माद्धेयाः कुदेवास्ते, मिथ्याभेषधरावहाः।
ग्राह्याः सम्यक्त्वसम्पन्ना, जिनधर्मप्रभावकाः।।3।।

चक्रेश्वर्यादिदिक्पाला, यक्षाश्च शांतिहेतवे।
सम्यग्दर्शनयुक्तत्वात्ते पूज्या जिनशासने।।4।।[2]

जो देव मिथ्यात्वी क्रूर-हिंसक हैं, शस्त्र, परिग्रह सहित हैं, माँस की, मद्य की वृत्ति होने से निंद्य हैं ऐसे देवता हीन हैं अतः ये हेय हैं इनसे अतिरिक्त सम्यक्त्व से संपन्न जिनशासन की प्रभावना करने वाले देवता ग्राह्य हैं–मान्य है। ऐसे चक्रेश्वरी आदि शासनदेवी-देवता, दिक्पाल, क्षेत्रपाल आदि तथा यक्ष आदि देवता शांति के लिए हैं। ये सम्यक्त्वी होने से जिनशासन में पूज्य माने गये हैं।

जक्खणाम–

गोवदणमहाजक्खा, तिमुहो जक्खेसरो य तुंबुरओ।
मादंगविजयअजिओ, बह्मो बह्मेसरो य कोमारो।।934।।[3]

छम्मुहओ पादालो, किण्णरकिंपुरुसगरुडगंधव्वा।
तह य कुबेरो वरुणो, भिउडी-गोमेधपास-मातंगा।।935।।

गुज्झकओ इदि एदे, जक्खा चउवीस उसहपहुदीणं।
तित्थयराणं पासे, चेट्ठंते भत्ति-संजुत्ता।।936।।

जक्खीओ चक्केसरि-रोहिणिपण्णत्तिवज्जसिंखलया।
वज्जंकुसा य अप्पदिचक्केसरि-पुरिसदत्ता य ।।937।।

1-2. श्री उमास्वामी श्रावकाचार, पृ. 29 पर मंत्र प्रदीप के श्लोक। 3. तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ, प्रथम भाग, अधिकार-4, पृ. 266-267।

मणवेगाकालीओ, तह जालामालिणी महाकाली।
गउरी-गंधारीओ, वेरोही सोलसा अणंतमदी।।938।।

माणसिमहमाणसिया, जया य विजयापराजिदाओ य।
बहुरूपिणिकुंभंडी, पउमासिद्धायिणीओ त्ति।।939।।

1. गोवदन, 2. महायक्ष, 3. त्रिमुख, 4. यक्षेश्वर, 5. तुम्बुरव, 6. मातंग 7. विजय, 8. अजित, 9. ब्रह्म, 10. ब्रह्मेश्वर, 11. कुमार, 12. षण्मुख, 13. पाताल, 14. किन्नर, 15. किंपुरुष, 16. गरुड़, 17. गंधर्व, 18. कुबेर, 19. वरुण, 20. भृकुटि, 21. गोमेध, 22. पार्श्व, 23. मातंग (धरणेंद्र), 24. गुह्यक, इस प्रकार भक्ति से संयुक्त ये चौबीस यक्ष ऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थंकरों के समवसरण में उनके पास में स्थित रहते हैं।

इसी प्रकार 1. चक्रेश्वरी, 2. रोहिणी, 3. प्रज्ञप्ति, 4. वज्रश्रृंखला, 5. व्रजांकुशा, 6. अप्रतिचक्रेश्वरी, 7. पुरुषदत्ता, 8. मनोवेगा, 9. काली, 10, ज्वालामालिनी, 11. महाकाली, 12, गौरी, 13, गांधारी, 14. वैरोटी, 15. सोलसा–अनंतमती, 16. मानसी, 17 महामानसी, 18 जया, 19 विजया, 20 अपराजिता, 21. बहुरूपिणी, 22. कूष्मांडी, 23. पद्मावती, 24. सिद्धायिनी ये चौबीस यक्षिणियां भी वहां समवसरण में चौबीस तीर्थंकरों के समीप में रहा करती हैं।

इसी प्रकार अकृत्रिम जिनमंदिरों का वर्णन करते हुये इसी तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में कहा है–

सिरिसुददेवीण तहा, सव्वाण्हसणक्कुमारजक्खाणं।
रूवाणिं पत्तेक्कं पडि, वररयणाइरइदाणिं[1]।।1881।।

प्रत्येक प्रतिमा के पास उत्तम रत्नादि से निर्मित श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाण्ह व सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियाँ रहती हैं।

यही बात त्रिलोकसार ग्रंथ में भी है–

सिरिदेवी सुददेवी, सव्वाण्ह-सणक्कुमार-जक्खाणं।
रूवाणि य जिणपासे, मंगलमट्ठविहमवि होदि[2]।।988।।

वहां अकृत्रिम जिनमंदिरों में जिनप्रतिमा के पास में श्रीदेवी (लक्ष्मी) श्रुतदेवी (सरस्वती) की मूर्तियां एवं सर्वाण्ह यक्ष और सनत्कुमार यक्ष की मूर्तियां बनीहुई हैं। उसी प्रकार प्रत्येक जिनप्रतिमा के पास में अष्ट मंगलद्रव्य भी स्थित हैं।

1. तिलोयपण्णत्ति अधिकार-4, पृ. 387। 2. त्रिलोकसार, पृ. 753।

गोम्मटसार की प्रशस्ति देखने से समझ में आता है कि चामुंडराय ने गोम्मटगिरि पर भगवान नेमिनाथ की प्रतिमा बनवाई। दक्षिणकुक्कुट जिन (भावान बाहुबली स्वामी) की प्रतिमा बनवाई। एक स्तंभ बनवाकर उस पर यक्ष की प्रतिमा स्थापित की, इन यक्ष के मुकुट में प्रकाशमान रत्न लगे हुये थे। यथा–

गोम्मटसंगहसुत्तं गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य।
गोम्मटरायविणिम्मिय-दक्खिणकुक्कड जिणो जयउ।।968।।

गोम्मटसंग्रहसूत्रं गोम्मटशिखरोपरि गोम्मटजिनश्च।
गोम्मटरायविनिर्मितदक्षिणकुक्कटजिनो जयतु[1]।।968।।

अर्थ- गोम्मटसारसंग्रहरूपसूत्र, गोम्मटशिखर के ऊपर चामुंडराय राजाकर बनवाये जिनमंदिर में विराजमान एक हाथप्रमाण इन्द्रनीलमणिमय नेमिनाथनामा तीर्थंकरदेव का प्रतिबिंब तथा उसी चामुंडरायकर निर्मापित लोक में रूढ़िकर प्रसिद्ध दक्षिणकुक्कटनामा जिनका प्रतिबिम्ब जयवंत प्रवर्तो।।968।।

जेण विणिम्मियपडिमा-वयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं।
सव्वपरमोहिजोगिहिं, दिट्ठं सो गोम्मटो जयउ।।969।।

येन विनिर्मितप्रतिमा-वदनं सर्वार्थसिद्धिदेवैः।
सर्वपरमावधियोगिभिः, दृष्टं स गोम्मटो जयतु।969।।[2]

अर्थ–जिस रायकर बनवाया गया जो जिनप्रतिमा का मुख वह सर्वार्थसिद्धि के देवों ने तथा सर्वावधि-परमावधिज्ञान के धारक योगीश्वरों ने देखा है वह (चामुंडराय) सर्वोत्कृष्टपने से वर्तो ।।969।।)

वज्जयणं जिणभवणं, ईसिपब्भारं, सुवण्णकलसं तु।
तिहुवणपडिमाणिक्कं, जेण कयं जयउ सो राओ।।970।।

वज्रतलं जिनभवनमीषत्प्राग्भारं सुवर्णकलशं तु।
त्रिभुवनप्रतिमानमेकं येन कृतं जयतु स रायः।।970।।

अर्थ–जिसका, अवनितल (पीठबंध) वज्रसरीखा है, जिसका ईषत्प्राग्भार नाम है, जिसके ऊपर स्वर्णमयी कलश है तथा तीन लोक में उपमा देने योग्य ऐसा अद्वितीय जिनमंदिर जिसने बनवाया ऐसा चामुंडराय जयवंत वर्तो।।970।।

जेणुब्भियथंभुवरिम-जक्खतिरीटग्गकिरणजलधोया।
सिद्धाणं सुद्धपाया, सो राओ गोम्मटो जयउ।।171।।

1-2. गोम्मटसार कर्मकांड।

येनोभिदतस्तम्भो-परिमयक्षतिरीटाग्रकिरणजलधौतौ।
सिद्धानां शुद्धपादौ, स रायो गोम्मटो जयतु।।971।।

अर्थ–जिसने चैत्यालय में खड़े किये हुये खंभों के ऊपर स्थित जो यक्ष के आकार हैं उनके मुकुट के आगे के भाग की किरणोंरूप जल से सिद्धपरमेष्ठियों के आत्मप्रदेशों के आकार रूप शुद्ध चरण धोये हैं ऐसा चामुंडराय जय को पाओ।

भावार्थ–चैत्यालय में स्तंभ बहुत ऊंचा बना हुआ है उसके ऊपर यक्ष की मूर्ति है उसके मुकुट में प्रकाशवन्त रत्न लगे हुये हैं।।971।।

इसी प्रकार से बड़वानी–बावनगजा में भगवान ऋषभदेव की चौरासी फुट ऊँची प्रतिमा उसी पाषाण को काट कर बनाई गई है। इस प्रतिमा के आजू-बाजू में उसी पाषाण में गोमुख यक्ष एवं चक्रेश्वरी यक्षी की मूर्ति बनी हुई है। ये प्रतिमाएँ भी अतीव प्राचीन हैं।

खंडगिरी-उदयगिरी की गुफाओं में जिनप्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। उनके आजू-बाजू में यक्ष–यक्षियों की मूर्तियां बनी हुई हैं। वहां की एक रानी गुफा के शिलालेख से ज्ञात होता है कि ये मूर्तियां चौबीस सौ वर्ष पुरानी उत्कीर्ण हैं।

आप शांतचित्त होकर विचार कीजिये, न तब काष्ठासंघ ही पैदा हुआ था और न तब तक वस्त्रधारी भट्टारक ही हुये थे।

इसी प्रकार से दक्षिण में, बुंदेलखंड में, उत्तर में, राजस्थान में अनेक जिन प्रतिमाओं के आजू-बाजू में यक्ष-यक्षियों की मूर्तियां बनी हुई हैं।

प्रतिष्ठा शास्त्रों में भी यक्ष-यक्षी की मूर्ति बनाने के प्रमाण मौजूद हैं–

जिनप्रतिमा का लक्षण (यक्ष-यक्षी समेत)

शान्तप्रसन्नमध्यस्थ-नासाग्रस्थाविकारदृक्।
सम्पूर्णभावरूपानु-विद्धांगं लक्षणान्वितम्।।
रौद्रादिदोषनिर्मुक्तं प्रातिहार्यांकयक्षयुक्।
निर्माप्य विधिना पीठे, जिनबिम्बं निवेशयेत्।।[1]

अर्थ–जिसके मुख की आकृति शांत हो, प्रसन्न हो, मध्यस्थ हो, नेत्र विकार रहित हों, दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर हो, जो केवलज्ञान के सम्पूर्ण भागों से सुशोभित हों, जिसके अंग-उपांग सब सुन्दर हों, रौद्र आदि भावों से रहित हों, आठों प्रातिहार्यों से विभूषित हो,। चिन्ह से सुशोभित हों यक्ष-यक्षी सहित हों और ध्यानस्थ हों इस प्रकार के शुभ लक्षणों से सुशोभित जिनप्रतिमा

1. प्रतिष्ठा सारोद्धार, अध्याय-1, पृ. 7।

बनवाना चाहिए और प्रतिष्ठा करा कर पूजा करनी चाहिए। जिस प्रतिमा में ये लक्षण न हों वह अरहन्त की प्रतिमा नहीं कही जा सकती।

प्रातिहार्याष्टकोपेतां, यक्ष-यक्षी समन्विताम्।
स्वस्वलांच्छनसंयुक्तां, जिनार्चां कारयेत्सुधीः।।[1]

अर्थ–जो आठ प्रातिहार्यों से सुशोभित है, यक्ष-यक्षी सहित है और अपने-अपने चिन्हों से सुशोभित है ऐसी प्रतिमा बुद्धिमानों को बनवानी चाहिए।

यक्षं च दक्षिणे पार्श्वे, वामे शासनदेवताम्।
लाञ्छनं पादपीठाधः, स्थापयेद् यस्य यद्भवेत।।[2]

अर्थ–जिनप्रतिमा के दांई ओर यक्ष की मूर्ति होनी चाहिए बांई ओर शासनदेवता अर्थात् यक्षी की मूर्ति होनी चाहिए। और सिंहासन के नीचे जिनकी प्रतिमा हो उनका चिन्ह होना चाहिए ।

स्थापयेदर्हतां छत्र-त्रयाशोकप्रकीर्णकम्।
पीठं भामण्डलं भाषां, पुष्पवृष्टिं च दुन्दुभिम्।।76।।
स्थिरेतरार्चयोः पाद पीठस्याधो यथायथम्।
लांछनं दक्षिणे पार्श्वे, यक्षं यक्षीं च वामके।।77।।[3]

अर्थ–अरहन्त प्रतिमा के निर्माण के साथ-साथ तीन छत्र, अशोकवृक्ष, सिंहासन, भामण्डल, चमर, दिव्यध्वनि, दुन्दुभि, पुष्पवृष्टि ये आठ प्रातिहार्य अंकित होने चाहिए। प्रतिमाएं चाहे चल हो चाहे अचल हों, परन्तु उनका चिन्ह सिंहासन के नीचे होना चाहिए। दाहिनी ओर यक्ष और बांई ओर यक्षी होनी चाहिए।

अथ बिम्बं जिनेन्द्रस्य, कर्तव्यं लक्षणान्वितम्।
कृत्वायतनसंस्थानं, तरुणांगं दिगम्बरम्।।
मूलप्रमाणपर्वाणां, कुर्यादष्टोत्तरं शतम्।
अंगोपांगविभागश्च, जिनबिम्बानुसारतः।।
प्रातिहार्याष्टकोपेतं, सम्पूर्णावयवं शुभम्।
भावरूपानुविद्धांगं, कारयेद्बिम्बमर्हतः।।
प्रातिहार्यं विना शुद्धं, सिद्धं विम्बमपीदृशम्।
सूरीणां पाठकानां च, साधूनां च यथागमम्।।

अर्थ–भगवान जिनेन्द्र देव की प्रतिमा लक्षण सहित बनवानी चाहिए। जो

1. जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय। 2. वसुनन्दी प्रतिष्ठापाठ। 3. प्रतिष्ठासारोद्धार, अध्याय-1, पृ. 9।

समचतुरस्र संस्थान हो, तरुणावस्था की हो, दिगम्बर हो, उसका आकार वास्तुशास्त्र के अनुसार दशताल प्रमाण हो, उसके आकार के एक सौ आठ भाग हों, अंग-उपांगों का विभाग प्रतिमा के अनुसार ही होना चाहिए। जो आठ प्रातिहार्यों से सुशोभित हो, जिसके सम्पूर्ण अवयव हों। जो शुभ हो उसका शरीर केवलज्ञान को प्रकाशित करने वाले भावों से परिपूर्ण हो, इस प्रकार अरहन्त की प्रतिमा बनवानी चाहिए। यदि उस प्रतिमा के साथ आठ प्रातिहार्य न हों तो वह सिद्धों की प्रतिमा हो जाती है। आचार्य, उपाध्याय और साधुओं की प्रतिमा भी आगम के अनुसार बनानी चाहिए।

कारयेदर्हतो बिम्बं, प्रातिहार्यसमन्वितम्।
यक्षाणां देवतानां च, सर्वालंकारभूषितम्।।
स्ववाहनायुधोपेतं, कुर्यात्सर्वांगसुन्दरम्।

अर्थ–जिनप्रतिमा आठ प्रातिहार्य सहित होनी चाहिए। तथा यक्ष–यक्षी सहित होनी चाहिए। वे यक्ष और यक्षी समस्त अलंकारों से सुशोभित होने चाहिए, अपने-अपने आयुध और वाहन सहित हों तथा सर्वांग सुन्दर हों।

सैद्धं नु प्रातिहार्यांकयक्षयुग्मोज्झितं शुभम्।

अर्थ–जिस प्रतिमा में आठ प्रातिहार्य न हों और यक्ष यक्षी न हों उनको सिद्ध प्रतिमा कहते हैं।

वर्तमान में महान बीसपंथी आचार्य

बीसवीं शताब्दी में चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज दक्षिण में हुये। इन्होंने पंचामृत अभिषेक को प्रमाणिक सिद्ध किया और अपने शिष्यों को करने का उपदेश ही नहीं, आदेश भी दिया। वे आचार्य देव स्वयं चर्या से पूर्व भगवान का पंचामृत अभिषेक देखकर गंधोदक लेकर ही आहार को उठते थे।

मैं स्वयं सन् 1955 में कुंथलगिरी में उन आचार्यदेव की यम सल्लेखना देखने के लिए गयी थी। वहां स्वयं देखा कि आचार्य श्री भगवान की प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक अंत तक देखते रहे हैं। जब भगवान की प्रतिमा को चंदन का विलेपन किया जाता, कटोरा भर चंदन लगाया जाता तो वे भावविभोर हो उठते और गद्गद्वाणी से स्तुति पढ़ते हुये पुलकित हो जाते थे। वहां प्रतिदिन अभिषेक की बोली होती थी और श्रावक बोली लेकर सपत्नीक अभिषेक करते थे।

उनके प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के श्री चरणों में मुझे लगभग दो वर्ष रहने का सौभाग्य मिला। उन्हीं के करकमलों से मैंने सन् 1956 में वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन आर्यिका दीक्षा ग्रहण की थी। आचार्यश्री प्रतिदिन प्रातः श्रीजी का पंचामृत अभिषेक देखते थे उस समय संघ के ब्रह्मचारी सूरजमल जी प्रमुख रहते थे। संघ के अन्य ब्रह्मचारीगण एवं ब्रह्मचारिणी बाईयाँ भी अभिषेक करती थीं।

उन्हीं के पट्टाचार्य श्री शिवसागर जी महाराज भी प्रतिदिन भगवान का पंचामृत अभिषेक देखते थे। उसी परंपरा में तृतीय पट्टाधीश आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज भी प्रतिदिन पंचामृत अभिषेक देखते थे। दिल्ली में लालमंदिर, दरियागंज स्थानों में भी सन् 1974 में आचार्य श्री अपने विशाल संघ सहित ठहरे थे। वहां भी प्रतिदिन संघ के ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी वर्ग अभिषेक करके आचार्य श्री को दिखाते थे।

इन्हीं आचार्य धर्मसागर जी के पट्ट पर आसीन हुये चतुर्थ पट्टाचार्य श्री अजितसागर जी महाराज भी अपने संघ सहित प्रतिदिन प्रातः भगवान का पंचामृत अभिषेक देखते थे। पंचम पट्टाचार्य श्री श्रेयांससागर जी महाराज प्रतिदिन पंचामृत अभिषेक देखते थे।

इन्हीं आचार्य शांतिसागर जी के शिष्यों में आचार्य श्री पायसागर जी, आचार्य श्री सुधर्मसागर जी, आचार्य श्री कुंथुसागर जी आदि आचार्य हुये हैं। ये

सभी पंचामृत अभिषेक देखते थे। आ.कल्प चंद्रसागर जी महाराज तो इसके विशेष ही समर्थक प्रसिद्ध हुये हैं।

इसी प्रकार आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी महाराज भी प्रतिदिन पंचामृत अभिषेक देखते थे। इनके शिष्य सन्मार्ग दिवाकर पूज्य आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज ने अपने विशाल संघ सहित सारे भारत में भ्रमण किया था। दक्षिण से उत्तर तक शायद ही उन्होंने कोई ग्राम या तीर्थ छोड़ा हो। इनके संघ में ब्र. चित्राबाई जी प्रतिदिन आहार से पूर्व आचार्यश्री को अभिषेक दिखाती थी पुनः गंधोदक लेकर आचार्यश्री आहार के लिए निकलते थे।

ऐसे आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज भी प्रतिदिन अभिषेक देखते थे। आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज जाति से ओसवाल थे। ये दिगंबर बन गये, कट्टर तेरापंथी थे। पुनः आचार्य श्री वीरसागर जी द्वारा जयधवला पृष्ठ 100 का प्रमाण दिखाने पर प्रभावित होकर बीसपंथी श्रावक बनकर सन् 1957 में इन्हीं आचार्यश्री से मुनि दीक्षा लेकर दिगंबर मुनि बन गये। आप भी बराबर पंचामृत अभिषेक देखते थे।

वर्तमान में आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज, आचार्य श्री अभिनंदनसागर जी महाराज, आचार्य श्री रयणसागर जी महाराज आदि भी बराबर पंचामृत अभिषेक देखते हैं। इनके संघों में जिनप्रतिमाएँ हैं।

आर्यिकाओं में आचार्य श्री शांतिसागर जी की शिष्या आ. चन्द्रमतीजी के संघ में भी जिनप्रतिमा थी वे भी अभिषेक देखती थीं। आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की शिष्या आर्यिका वीरमती जी भी प्रतिदिन पंचामृत अभिषेक देखती थीं। आचार्य श्री वीरसागर जी की शिष्या इंदुमती जी भी प्रतिदिन अभिषेक देखती थीं। ये स्त्रियों द्वारा अभिषेक करने के पक्ष में बहुत ही कट्टर थीं। इन्हीं के संघ में आ.सुपार्श्वमती जी भी पंचामृत अभिषेक के विषय में और स्त्रियों द्वारा अभिषेक करने के पक्ष में दृढ़ रही हैं।

मैंने स्वयं सन् 1956 से ही आचार्य श्री वीरसागर जी की आज्ञा से संघ में जिनप्रतिमा रखी थी। प्रतिदिन संघस्थ ब्रह्मचारिणियाँ पंचामृत अभिषेक करती थीं। सन् 63 में कलकत्ते के चातुर्मास में ब्र. प्यारेलाल जी भगतजी ने भी मेरी विचारधाराओं को बहुमान दिया था।

ब्र. प्यारेलाल भगत (कलकत्ता निवासी) जैसे प्रबुद्ध लोगों ने जब जयधवला ग्रंथ की पंक्तियां देखीं तब यही कहा कि, ''वास्तव में जो आगम में है

वही सही है। मध्य के युग में शिथिलाचार के हो जाने से श्रावकों में विवेक कम हो जाने से यह तेरापंथ चलाया गया है किंतु यह मनगढ़ंत ही है। फिर भी हम लोग केवल मंदिरों में और जनता में आपस में विसंवाद न हो, फूट न पड़े इसीलिए तेरापंथी बने हुये हैं।''

आज तक भी मैंने गुरूपरंपरा को नहीं छोड़ा है। वास्तव में मैंने आचार्य श्री पूज्यपादस्वामी का पंचामृत अभिषेक पाठ देखकर अपनी श्रद्धा को मजबूत किया है।

आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज की शिष्या गणिनी आर्यिका विजयमती जी भी पंचामृत अभिषेक प्रतिदिन कराती थीं।

मेरी शिष्या आर्यिका जिनमती जी प्रतिदिन पंचामृत अभिषेक देखती थीं। आर्यिका आदिमती जी भी पंचामृत अभिषेक देखती हैं। ये आदिमती जी अंगूरीबाई थीं संघ में मेरे पास आयी स्वयं ही आगमप्रमाण देखकर अभिषेक करने लगी थीं।

आर्यिका विशुद्धमती जी आचार्य श्री शिवसागर जी की शिष्या थीं। ये सागर महिलाश्रम की संचालिका सुमित्राबाई तेरापंथी थीं। आचार्य श्री के करकमलों से दीक्षा लेते समय आचार्य श्री की आज्ञा से इन्होंने स्वयं संघस्थ जिनप्रतिमा का पंचामृत अभिषेक किया था।

आगमपंथ—यहां तक मैंने अनेक प्रमाण पंचामृत अभिषेक के, शासन देव-देवी के दिये हैं। इस दृष्टि से ये सब प्रमाण आगम सम्मत हैं। अतः पंचामृत अभिषेक करने-कराने वाले अथवा उसका उपदेश, आदेश देने वाले हम लोग साधु-साध्वी वर्ग आगमपंथी हैं। यह स्पष्ट दिख रहा है।

बीसपंथ-तेरापंथ—आजकल इन उपर्युक्त प्रमाणों के अनुसार पंचामृत अभिषेक आदि करने वालों को बीसपंथी कहा जाता है और इनसे अतिरिक्त मात्र जल से अभिषेक करने वाले तथा फल, फूल नहीं चढ़ाने वालों को तेरापंथ कहा जाता है। यद्यपि यह पंथ-भेद किसी भी आगम ग्रंथ में—प्राचीन शास्त्र या पुराणों में देखने को नहीं मिलता है फिर भी आज वर्तमान में प्रचलित है।

श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार-चतुर्थ अधिकार

(पंडित सदासुख जी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार की वचनिका हिन्दी टीका में दोनों पंथों को आगम सम्मत माना है और अपनी-अपनी रुचि अनुसार दोनों को पूजा करने के लिए कहा है।)

इहां ऐसा विशेष और जानना जो जिनेन्द्र के पूजन समस्त च्यार प्रकार के देव तो कल्पवृक्षनितैं उपजे गन्ध, पुष्प, फलादि सामग्री करि पूजन करै हैं अर सौधर्म इन्द्रादिक सम्यग्दृष्टि देव हैं ते तो जिनेन्द्र की भक्ति पूजन स्तवन करके ही अपनी देवपर्यायकूं सफल मानैं। अर मनुष्यनिमें चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्रादिक राजेन्द्र हैं ते मोतीनिके अक्षत रत्ननिके पुष्प, फल, दीपकादिक तथा अमृतपिंडादिकरि जिनेन्द्र का पूजन स्तवन नृत्य गानादिककरि महापुण्य उपार्जन करै हैं। अर अन्य मनुष्यिनमें हूँ जिनके पुण्य के उदयतैं सम्यक् उपदेश के ग्रहणतैं जिनेन्द्र के आराधना में भक्ति उत्पन्न होय ते समस्त जाति, कुल के धारक यथायोग्य पूजन करैं हैं। समस्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपना-अपना सामर्थ्य अपना-अपना ज्ञान, कुल, बुद्धि, सम्पदा, संगति देश-काल के योग्य अनेक स्त्री-पुरुष नपुंसक धनाढ्य निर्धन सरोग नीरोग जिनेन्द्र का आराधना करें हैं। केई ग्राम निवासी हैं, केई नगरनिवासी हैं, केई वननिवासी हैं, केई अति छोटे ग्राम में बसने वाले हैं तिन में केई तो अतिउज्ज्वल अष्टप्रकार सामग्री बनाय पूजन के पाठ पढ़िकरि पूजन करैं हैं केई कोरा सूका जव, गेहूं, चना, मक्का, बाजरा, उड़द, मूंग, मोठ इत्यादिक धान्य की मूठी ल्याय जिनेन्द्र को चढ़ावै हैं केई **रोटी चढ़ावै** हैं, **केई राबड़ी चढ़ावें हैं, केई अपनी बाड़ीतैं पुष्प ल्याय चढ़ावें है केई नाना प्रकार के हरित फल चढ़ावें हैं केई जल चढ़ावें हैं।** केई दाल, भात अनेक व्यंजन चढ़ावै हैं, केई नाना मेवा चढ़ावै हैं, केई मोतीनिके अक्षत माणिकनिके दीपक सुवर्ण रूपानिके तथा पंचप्रकार रत्ननि करि जड़े पुष्प फलादि चढ़ावैं हैं केई दुग्ध केई दही केई घृत चढ़ावें हैं, **केई नाना प्रकार के घेवर, लाडू, बरफी, पूड़ी, पूवा इत्यादिक चढावैं हैं,** केई वंदना मात्र ही करै हैं, केई स्तवन केई गीत नृत्य वादित्र ही करैं, केई अस्पर्श्य शूद्रादिक मंदिर के बाह्य ही रहि मंदिर के शिखर की तथा शिखरनि में जिनेन्द्र के प्रतिबिंब का ही दर्शन वन्दना करें हैं। ऐसे जैसा ज्ञान जैसी संगति जैसी सामर्थ्य जैसी धन सम्पदा जैसी शक्तितिस प्रमाण देशकाल के योग्य जिनेन्द्र का आराधक मनुष्य हैं ते वीतराग का दर्शन स्तवन पूजन वन्दनाकरि भावनिके अनुकूल उत्तम, मध्यम, जघन्य पुण्य का उपार्जन करे हैं। यो जिनेन्द्र का धर्म, जाति, कुल के अधीन नाहीं, धनसम्पदा के अधीन नाहीं वाह्यक्रिया के अधीन

नाहीं है। अपने परिणामनिकी विशुद्धता के अनुकूल फलै है। कोऊ धनाढ्य-पुरुष अभिमानी होय यश का इच्छुक होय मोतीनिके अक्षत माणिकानिके दीपक रत्नसुवर्ण के पुष्पनिकरि पूजन करै है अनेक वादित्र नृत्यगान करि बड़ी प्रभावना करेंहैं तो हू अल्प उपार्जन करैं, वा अल्प हू नाहीं करै, केवल कर्म का बंध हो करै हैं कषायनिके अनुकूल बंध होय है। केई अपने भावनिकी विशुद्धतातैं अति भक्तिरूप हुआ कोऊ एक जल फलादि करि वा अन्नमात्र करि वा स्तवनमात्रकरि महापुण्य उपार्जन करै हैं तथा अनेक भवनिके संचय किये पाप कर्म की निर्जरा करै हैं, धनकरि पुण्य मोल नाहीं आवै है। जे निर्वांछक हैं मन्दकषायी, ख्याति लाभ पूजादिकूं नाहीं बांछा करता केवल परमेष्ठी का गुणां में अनुरागी हैं तिनके जिनपूजन अतिशयरूप फलकूं फलै है।

अब यहां जिन पूजन सचित्त द्रव्यनितैं हु अर अचित्तद्रव्यनितैं हू आगम में कहया है जे सचित्त के दोषतैं भयभीत हैं। यत्नाचारी हैं ते तो प्रासुक जल गन्ध अक्षतकूं चन्दन कुंकुमादिकतैं लिप्त करि सुगंध रंगीन में पुष्पनिका संकल्पकरि पुष्पनितैं पूजें है तथा आगम में कहे सुवर्ण के पुष्प वा रूपा के पुष्प तथा रत्नजटित सुवर्ण के पुष्प तथा लवंगादिक अनेक मनोहर पुष्पनिकरि पूजन करै हैं अरु प्रासुक ही बहु आरम्भादिक रहित प्रमाणीक नैवेद्य करि पूजन करै है। बहुरि रत्ननि के दीपक वा सुवर्ण रूपामय दीपकनि करि पूजन करै हैं तथा सचिक्कणद्रव्यनिके केसर के रंगादितैं दीप का संकल्पकरि पूजन करैं हैं तथा चन्दन अगरादिकूं चढ़ावै हैं तथा बादाम, जायफल, पूंगीफलादिक अवधि शुद्ध प्रासुक फलनितैं पूजन करै हैं ऐसैं तो अचित्त द्रव्यनिकरि पूजन करै हैं। बहुरि जे सचित्त द्रव्यनितैं पूजन करै हैं ते जल, गन्ध, अक्षतादि उज्ज्वल द्रव्यनिकरि पूजन करै हैं अर **चमेली, चंपक, कमल, सोनजाई इत्यादिक सचित्त पुष्पनितैं पूजन करै है घृतका दीपक तथा कपूरादिक दीपकनिकरि आरती उतारै हैं अर सचित्त आम, केला, दाडिमादिक फलकरि पूजन करै हैं धूपायनि में धूपदहन करै हैं ऐसे सचित्त द्रव्यनिकरि हू पूजन करिये हैं दोऊ प्रकार आगम की आज्ञा-प्रमाण सनातन मार्ग है अपने भावनि के अधीन पुण्य बंध के कारण है।**

यद्यपि आगम में बीसपंथ से प्रचलित मान्यता के प्रमाण मौजूद हैं तेरापंथ के नहीं हैं फिर भी आज के युग में ईर्ष्या, द्वेष, भाव छोड़कर धर्मसहिष्णुता को धारण करते हुये बीसपंथियों को मिथ्यादृष्टि नहीं कहना चाहिए।

तेरापंथ—तेरापंथी की उत्पत्ति कब और कैसे हुयी? इसके लिए आप पढ़ें पं. बनारसीदास द्वारा लिखित स्वकथा जो कि 'अर्धकथानक' नाम से छपी है। इसमें विक्रम संवत् 1675 में तेरहपंथ की स्थापना मानी है।

अनेक तीर्थस्थलों पर शासन देव-देवियों के चित्र

हुबली-अनन्तनाथ बसदि : तीर्थंकर पार्श्वनाथ, अगल-बगल में धरणेन्द्र और पद्मावती, दसवीं शती।

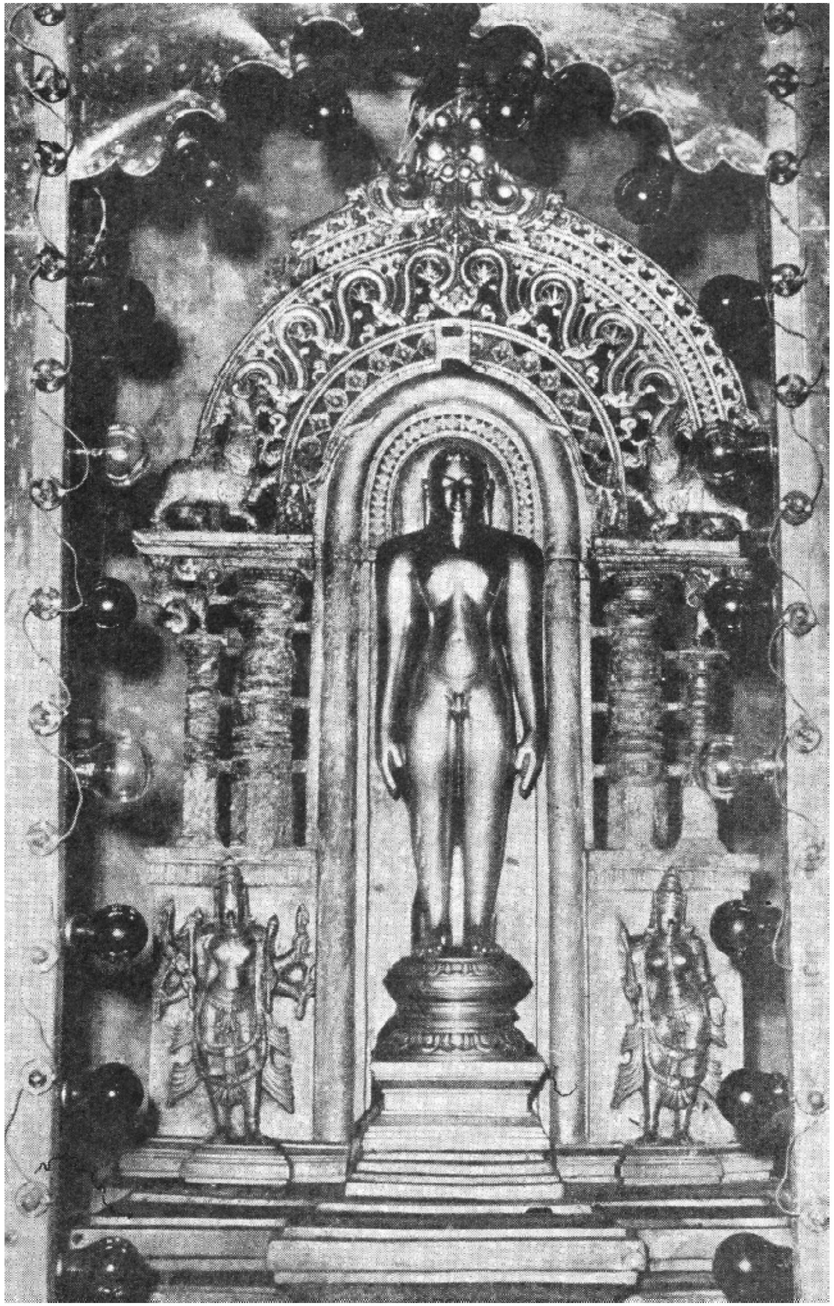

गुरुवायनकेरे-अनन्तनाथ बसदि : तीर्थंकर अनन्तनाथ की धातुमूर्ति शासन देव-देवी सहित

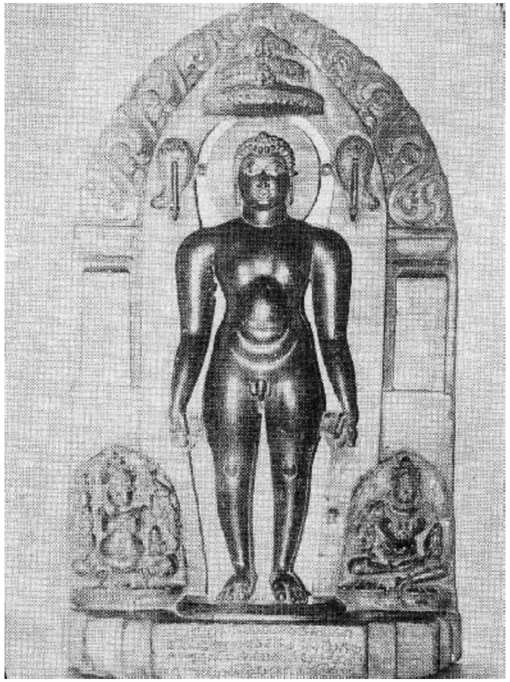

नेल्लिकर-पार्श्वनाथ बसदि : कायोत्सर्ग आसन में एक तीर्थंकर मूर्ति, चौदहवीं शती शासन देव-देवी सहित।

खजुराहो-शान्तिनाथ मंदिर में यक्ष-दम्पति।

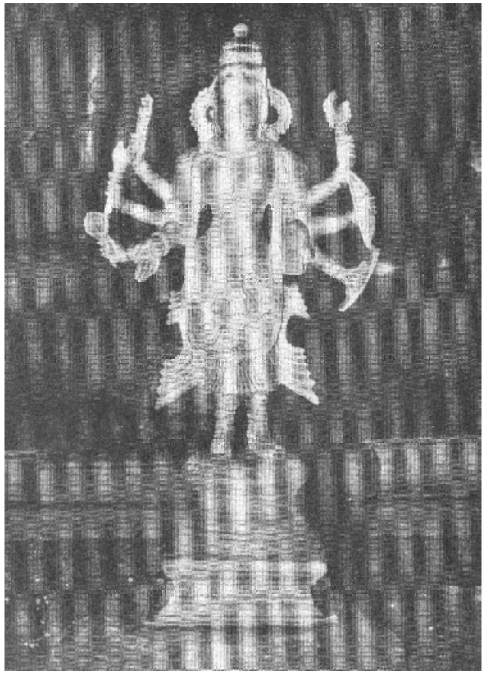

गेरुसोप्पा (जि. उत्तर कनारा)-ज्वालामालिनी बसदि में यक्षी जवालामालिनी की कांस्य मूर्ति, लगभग चौदहवीं शती।

कारंजा : ब्रह्मचर्याश्रम के संग्रहालय में अम्बिका की प्राचीन मूर्ति।

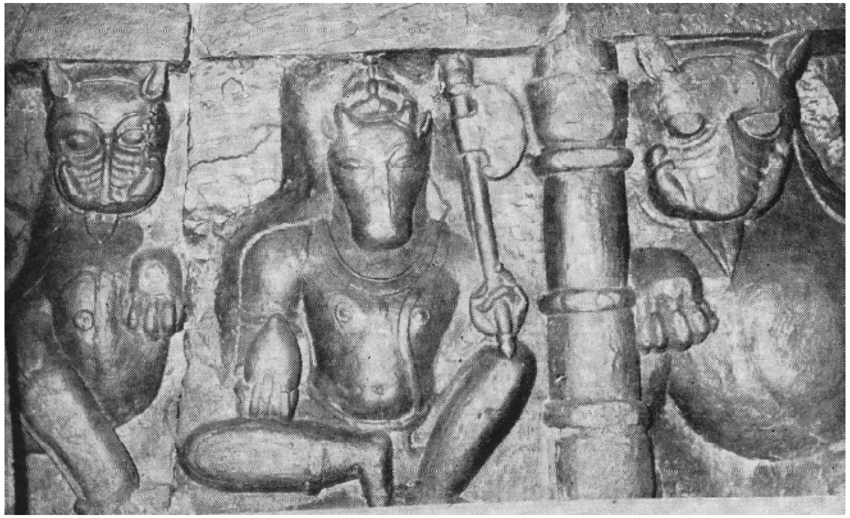

कुण्डलपुर-बड़े बाबा के पीठासन पर ऋषभदेव का यक्ष गोमुख

कुण्डलपुर-बड़े बाबा के पीठासन पर ऋषभदेव की यक्षी-चक्रेश्वरी।

सैरोन-गोमेध यक्ष और अम्बिका यक्षी।
शीर्ष पर तीर्थंकर नेमिनाथ विराजमान हैं।

वाराणसी-उदयसेन खड्गसेन के जैन मंदिर में पद्मावती देवी की मनोज्ञ मूर्ति।

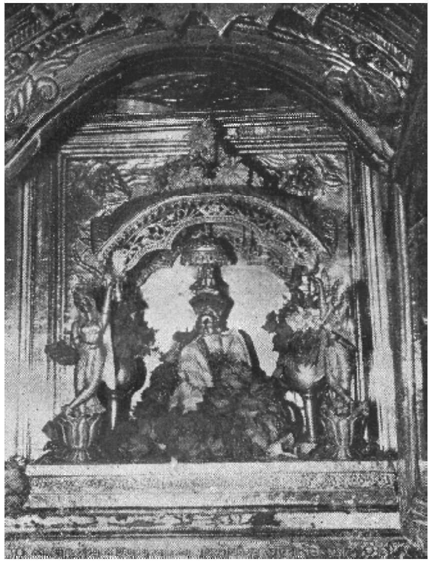

दिल्ली-श्री दिगम्बर जैन लाल मंदिर पद्मावती देवी की सातिशय प्रतिमा।

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में विराजमान पद्मावती देवी प्रतिमा

जेवर्गी-शान्तिनाथ बसदि : यक्षी पद्मावती की कांस्य मूर्ति, लगभग चौदहवीं शती।

ऐहोल-आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की यक्षी ज्वालामालिनी, लगभग ग्यारहवीं शती।

पद्मावती माता, अतिशय क्षेत्र हुमचा

बल्लभीपुर के निकट ढंकगिरि की जैन गुफा में प्राप्त तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा के साथ देवी अम्बिका

उमता (बिसनगर) गुजरात में विराजमान चक्रेश्वरी देवी

हुबली-अनन्तनाथ बसदि : एक जैन यक्षी, सोलहवीं शती।

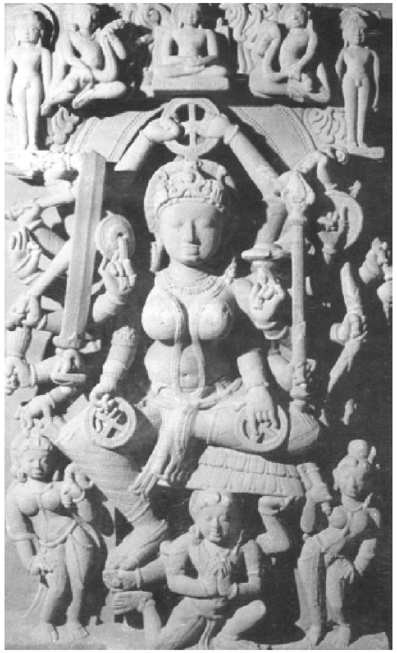

देवगढ़-साहू जैन संग्रहालय में विंशतिभुजी चक्रेश्वरी।

नागफणी पार्श्वनाथ : मौदरगाँव के निकट पहाड़ पर बने मंदिर में धरणेन्द्र मूर्ति

नगर संग्रहालय प्रयाग में प्रदर्शित पतियानदाई की अत्यन्त मनोहारी अनुमानतः गुप्तकालीन 23 यक्षियों सहित अम्बिका

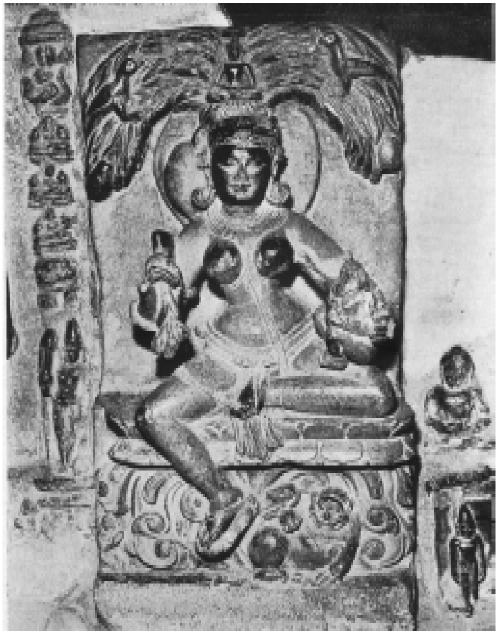

खण्डगिरि-पर्वत के बड़े मंदिर में अम्बिका की मूर्ति

श्री सिम्हनगड्डे बसदि मठ,
नरसिंहराजपुरा

खण्डगिरि-पर्वत पर बड़े मंदिर में गोमेद और अम्बिका यक्षी। शीर्ष भाग पर तीर्थंकर नेमिनाथ।

नरसिंहराजपुर (जि.-चिक्कमंगूर)-ज्वालामालिनी बसदि में यक्षी ज्वालामालिनी की पुष्प-मालाओं से अलंकृत मूर्ति।

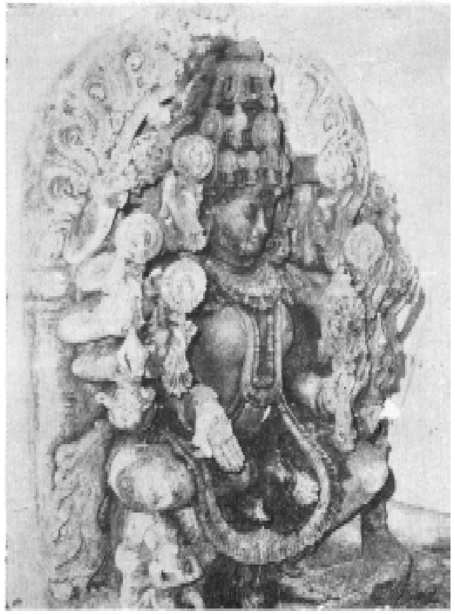

मर्कुली-त्रिकूट बसदि :
चक्रेश्वरी यक्षी।

काकंदी (खुखुन्दू) में प्राप्त अम्बिका देवी की मूर्ति। समय 12वीं शताब्दी लखनऊ राजकीय संग्रहालय

कुण्डल : यक्षी पद्मावती।

चक्रेश्वरी देवी प्रतिमा, अतिशय क्षेत्र बिलहरी